दोन की कहानियाँ

मिखाईल शोलोखोव



दोन की कहानियां

मिख़ाईल शोलोख़ोव

परिकल्पना
जनचेतना, डी–68, निरालानगर, लखनऊ

© परिकल्पना

प्रथम संस्करण: जनवरी, 2004

परिकल्पना प्रकाशन
जनचेतना, डी–68, निराला नगर,
लखनऊ–226020 द्वारा प्रकाशित

मूल्य: रु. 35.00 (पेपर बैक)
रु.70.00 (सजिल्द)

वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ
द्वारा मुद्रित

आवरण : रामबाबू

Don ki Kahaniya by SOLOKHOVE
ISBN 81-87425-53-9

अनुक्रम

दोन की कहानियां



१

जली बारूद की गंध छोड़ते खाली कारतूस, भेड़ की हड्डी, फ़ौजी नक़्शा, सैनिक गतिविधियों की रिपोर्ट, घोड़े के पसीने की गंधवाली लगाम, डबल रोटी का टुकड़ा – यह सब एक ही मेज़ पर पड़ा है। उधर खिड़की के दासे से पीठ टिकाये निकोल्का कोशेवोई सीलन के कारण फफूंद लगी खुरदरी बेंच पर बैठा है। उसकी ठंड से अकड़ी उंगलियों में पेंसिल है। मेज़ पर फैले पुराने पोस्टरों के पास आधा भरा फ़ार्म है। खुरदरे पन्ने पर बस यही लिखा है: कोशेवोई निकोलाई। स्क्वाड्रन कमांडर। खेतीहर परिवार से। रूसी युवक कम्युनिस्ट लीग का सदस्य।

आयु के ख़ाने में पेंसिल ने धीरे-धीरे लिखा: १८ वर्ष।

निकोल्का के कंधे चौड़े हैं, उम्र से बड़ा लगता है। झुर्रियों से घिरी आंखों और बूढ़ों की तरह झुकी कमर के कारण वह प्रौढ़ लगता है।

"बिल्कुल बच्चा है, छोकरा ही है, होंठों पर मां का दूध भी नहीं सूखा अभी," स्क्वाड्रनवाले मज़ाक़ में कहते हैं, "पर लाख ढूंढ़ने पर भी ऐसा दूसरा नहीं मिलेगा। दो-दो गिरोहों का सफ़ाया कर चुके हैं और अपना नुक्सान न के बराबर है। पूरे छह महीने से स्क्वाड्रन को ऐसी-ऐसी लड़ाइयां लड़ा रहा है। किसी पुराने कमांडर से उन्नीस नहीं है!"

निकोल्का को अपनी अठारह वर्ष की उम्र पर शर्म आती है। हमेशा उम्र के मनहूस ख़ाने में पहुंचकर पेंसिल अटक जाती है और निकोल्का के कपोल शर्म के कारण लाल हो जाते हैं। निकोल्का का पिता कज़्ज़ाक था, मतलब वह भी कज़्ज़ाक ही हुआ। उसे धुंधले सपने की तरह याद आता है कि जब वह कोई पांच-छह साल का था तो पिता ने उसे अपने फ़ौजी घोड़े पर बिठाया था।

"बेटा अयाल कसके पकड़े रह!" पिता जी चिल्लाकर कह रहे

थे और मां रसोई के दरवाजे में खड़ी निकोल्का की ओर देखकर मुस्करा रही थी, उनके चेहरे का रंग उड़ा-उड़ा-सा था, आंखें फड़े कभी वह घोड़े की पीठ से चिपटी नन्ही टांगों को, तो कभी लगाम पकड़े पिता जी की ओर देख रही थी।

यह बहुत पुरानी बात है। फिर जर्मनी की लड़ाई में निकोल्का का पिता लापता हो गया। उसके ठौर-ठिकाने की कोई खबर नहीं मिली। मां भी मर गयी। निकोल्का को अपने पिता से विरासत में घोड़ों से प्यार, अदम्य साहस और लच्छन मिला था – क़बूतरी के अंडे जितना बड़ा, ठीक वैसा जैसा पिता के था, बायीं टांग पर टखने से कुछ ऊपर। पंद्रह साल की उम्र तक नौकरी-चाकरी करता रहा और बाद में किसी से बरानकोट मांगकर गांव से गुज़रती लाल रेजीमेंट के साथ व्रांगेल* की फ़ौज से लड़ने चला गया। इन्हीं गर्मियों की बात है, निकोल्का सैन्य कमिसार के साथ दोन में नहा रहा था। वह निकोल्का की धूप से सांवली कुबड़ी पीठ को थपथपाकर हकलाता हुआ बोला:

"तु-तुम ... भ-भ-भाग्यशाली हो! हं-हां, भाग्यशाली हो! लच्छन कहते हैं, भाग्य की निशानी होता है।"

निकोल्का ने अपने चिट्टे दांत चमकाकर गोता लगाया, थोड़ी दूर जाकर सिर बाहर निकाला और फुफकारकर चिल्लाया:

"तुम भी क्या अजीब बात कहते हो! बचपन से यतीम हूं, ज़िंदगी भर लोगों की चाकरी करते-करते कमर झुक गयी और तुम कहते हो भाग्यशाली हूं!.."

और दोन को अपने आग़ोश में समेटती पीली संकरी रेती की ओर तैर पड़ा।

२

वह घर जिसमें निकोल्का टिका था दोन के ऊंचे किनारे पर स्थित था। खिड़की से हरा कछार और पानी की सलेटी धारा दिखायी पड़ती थी। तूफ़ानी रात को लहरें किनारे से टकरातीं, खिड़कियों के कपाट

---

* गृहयुद्ध में एक प्रतिक्रांतिकारी जनरल। – सं०

चरमराते और निकोल्का को लगता कि फ़र्श की दरारों से रिसकर घर में भरता पानी मकान को झिंझोड़ रहा है।

वह मकान बदलना चाहता था पर शरद तक बस वहीं रह गया। ठिठुरन भरे प्रातःकाल की नीरवता को नाल जड़े बूटों की ठकाठक से भंग करता निकोल्का ड्योढ़ी से निकला और चेरी की बगिया में ओस से नम रुपहली घास पर लेट गया। कोठरी में घर की मालकिन गाय को शांत खड़ा रहने के लिये पुचकार रही थी, बछड़ा ज़ोर-ज़ोर से रंभा रहा था और बाल्टी में दूध की धार गिरने की आवाज़ आ रही थी।

अहाते का फाटक खटका, कुत्ता भौंकने लगा। प्लाटून नायक की आवाज़ सुनायी पड़ी:

"कमांडर घर पर हैं?"

निकोल्का कोहनियों के बल उठकर बोला:

"यह रहा! क्यों, क्या हुआ?"

"क़स्बे से हरकारा आया है। कहता है कि साल्स्क इलाक़े से गिरोह आया है, ग्रुशिन्स्की राजकीय फ़ार्म पर कब्ज़ा कर लिया उसने..."

"बुलाओ उसे।"

हरकारा गर्म पसीने से तर घोड़े को अस्तबल की ओर खींच ले चला। पर वह आंगन के बीचों-बीच पहले अगली टांगों पर गिर पड़ा और फिर बगल पर लुढ़क गया, नथुने फड़काकर उसने दम तोड़ दिया। उसकी जड़ आंखें जंजीर से बंधे भौंक-भौंककर बेहाल कुत्ते पर टिक गयीं। बेचारे घोड़े को इसलिये दम तोड़ना पड़ा क्योंकि उस लिफ़ाफ़े पर जो हरकारा लाया था क्रॉस के तीन चिन्ह बने हुए थे और हरकारा बिना कहीं दम लिये चालीस वेर्स्ता* तक घोड़े को बेतहाशा दौड़ाता लाया था।

निकोल्का ने पढ़ा कि अध्यक्ष उसके स्क्वाड्रन की सहायता मांग रहा था। कमरे में तलवार लटकाते समय उसने थकान के साथ सोचा: "कहीं पढ़ने-वढ़ने के लिये जाना चाहिये, इधर यह गिरोह आ टपका... कमिसार ताना मारता है कि एक शब्द भी ठीक से लिख पाता नहीं

---

* १ वेर्स्ता–१.०६ किलोमीटर। – सं०

और कहने को स्क्वाड्रन का कमांडर है... मेरा इसमें क्या दोष है कि चर्च का स्कूल पास करने तक का वक़्त नहीं मिला? वह भी बड़ा अजीब है... और इधर यह गिरोह आ टपका... फिर ख़ून-ख़राबा होगा, मैं तो थक गया हूं ऐसी ज़िंदगी से... इस सब से जी उकता चुका है..."

वह चलते-चलते कारबाइन में गोलियां भरता हुआ बाहर निकला, दिमाग़ में घोड़ों की तरह विचार सरपट दौड़ते जा रहे थे: "शहर जाने को जी चाहता है... कहीं कुछ पढ़-बढ़ लेता..."

मरे घोड़े के पास से वह अस्तबल की ओर जा रहा था, धूल भरे नथुनों से बहती ख़ून की ऊदी धार को देखकर उसने मुंह फेर लिया।

३

ऊबड़-खाबड़ कच्ची सड़क पर छकड़ों की लीकों में घनी जंगली घास उगी हुई थी। कभी इस रास्ते से स्तेपी में सुनहली बूंदों की तरह छिटके खलिहानों को किसानों की बैलगाड़ियां आती-जाती थीं। मुख्य मार्ग टेलीग्राफ़ के खंभों के साथ-साथ जाता था। खंभों की पांत बीहड़ों और घाटियों को पार करके शरत्कालीन धुंध में विलीन हो रही थी और खंभों के साथ-साथ जाते मार्ग पर सरदार अपने गिरोह को लिये जा रहा था। गिरोह में सोवियत सत्ता से असंतुष्ट दोन और कुबान के पचास कज़्ज़ाक शामिल थे। तीन दिन और तीन रातों से वे रेवड़ में मुंह मारे भेड़िये की तरह पगडंडियों और बीहड़ों से भागे जा रहे थे, और निकोल्का कोशेवोई का दस्ता लगातार उनका पीछा कर रहा था।

गिरोह में भूतपूर्व फ़ौजी, शातिर और दुःसाहसी लोग शामिल थे, फिर भी उनका सरदार चिंतित था: रक़ाब के बल उचक-उचककर आंखों से स्तेपी को छान रहा था, दोन के उस पार फैली वन की नीलाभ पांत तक दूरी का अनुमान लगा रहा था।

बस ऐसे ही भेड़ियों की तरह लुकते-छिपते वे जा रहे थे और निकोल्का कोशेवोई का स्क्वाड्रन उनके सिर पर सवार था।

गर्मियों में निर्मल आकाश तले दोन की स्तेपियों में गेहूं की लह-

लहाती बालियां चांदी की तरह झंकार करती हैं। लुनाई से पहले सलोने, ठोस गेहूं की बालियों के गुच्छे सत्रह बरस के छोकरे की मूछों की तरह काले हो जाते हैं और जौ की बालियां आदमी से ऊंचाई में होड़ करने लगती हैं।

दाढ़ीवाले कज़्ज़ाक किसान वनों-कुंजों के किनारे दुम्मट मिट्टी में रेतीले टीलों पर जौ बोते हैं। फ़सल उसकी कोई ख़ास नहीं होती, कभी भी एक एकड़ से चार-पांच मन से अधिक नहीं रहती। पर बोते इसलिये हैं कि जौ से देसी वोद्का बनती है, ओस जैसी निर्मल; क्योंकि पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनके पुरखे पीते आये हैं। शायद इसीलिये दोन प्रदेश के कज़्ज़ाकों के राज्यचिन्ह पर भी शराब के पीपे पर बैठा नंगा कज़्ज़ाक बना था। पतझड़ के दिनों में बेद की टहनियों की बाड़ों के पीछे कज़्ज़ाकों की टोपियां लड़खड़ाती नज़र आतीं।

इसीलिये सरदार भी रोज धुत्त रहता, इसीलिये मशीनगनवाली बग्घियों में गाड़ीवान और मशीनगन चालक नशे में झूमते रहते।

गिरोह के सरदार ने सात साल से अपने गांव के दर्शन नहीं किये थे। पहले जर्मनों की क़ैद में रहा, फिर व्रांगेल की फ़ौज में भरती हो गया, धूप में तपता कोन्स्तानतीनोपोलिस, कंटीले तार से घिरा बंदी शिविर, फिर पालदार तुर्क किश्ती, कुबान के घने सरकंडे और अब यह गिरोह।

बस यही थे सरदार की ज़िंदगी के मुक़ाम। उसका दिल वैसे ही कठोर हो गया था जैसे कि स्तेपी में झील के सूखे कीचड़ में ढोरों के खुरों के निशान। अंदर ही अंदर से घुन की तरह अजीब-सा दर्द उसे कुतर रहा था, अंग-अंग में क्लांति व्याप्त थी। सरदार महसूस करता था कि इस दर्द और पीडा को किसी भी शराब से नहीं बुझाया जा सकता। पर पीता था – एक दिन भी होश में नहीं रहता था क्योंकि दोन की स्तेपियों में पके जौ की मधुर गंध व्याप्त थी और गांवों-क़स्बों में फ़ौजियों की गौरवर्ण बीवियां ऐसी वोद्का बनाती थीं जैसे चश्मे का बहता पानी।

४

सुबह तड़के इस साल का पहला पाला पड़ा। कुमुदिनियों के चौड़े पत्तों पर चांदी की तरह बिखर गया, लुकीच को सुबह पनचक्की के

पहिये पर अभ्रक की तरह चमचमाते हिमकण दिखाई दिये।

सुबह से लुकीच की तबीयत खराब थी: कमर दुख रही थी, तीखे दर्द से पैरों में मानो सीसा भर गया था। वह चक्की का मुआयना करने लगा, बड़ी मुश्किल से पांव घसीट रहा था, बेढब बदन का हाड़-मांस उसे अलग-अलग होता लग रहा था। दलिया दलने की मशीन से चूहों की बिरादरी निकलकर दौड़ी, पानी से भरी नम आंखें उसने ऊपर उठायीं: छत की कड़ी पर बैठा क़बूतर गुटरगूं कर रहा था। नथुनों से, जो चिकनी मिट्टी से बने लगते थे, बूढ़े ने सीलन की घुटन भरी बू और पिसे गेहूं की सुगंध को फेफड़ों में खींचा, कान लगाकर सुनने लगा: पानी गुड़-गुड़ करता, चटकारे लेता उन बल्लियों को चूस रहा था जिन पर पनचक्की टिकी थी। सोच में डूबकर वह अपनी दाढ़ी मसोसने लगा।

लुकीच दम लेने के लिये मधुवाटिका में जाकर लेट गया। भेड़ की खाल का ओवरकोट ओढ़कर सो गया, मुंह खुला था, होंठों के कोनों में जमी लसदार और गर्म राल से दाढ़ी भीग रही थी। सांझ के झुटपुटे ने बूढ़े की कुटिया पर स्लेटी रंग पोत दिया था, कोहरे के दूधिया चिथड़ों ने पनचक्की को लपेट लिया...

जब लुकीच की आंख खुली तो उसे जंगल से आते दो घुड़सवार नजर आये। उनमें से एक मधुवाटिका में बूढ़े को देखकर चिल्लाया:

"बाबा, इधर आओ!"

लुकीच शक की नज़र से उन्हें देखकर खड़ा हो गया। इन अशांत वर्षों में वह ऐसे अस्त्रधारी लोगों को बहुत देख चुका था जो बिना पूछे चारा और आटा ले लेते थे। कोई भेद किये बिना वह उन सबसे गहरी नफ़रत करता था।

"जल्दी आ, खूसट बुड्ढे!"

छत्ताघरों के बीच से, बदरंग होंठों से निःशब्द बुदबुदाता हुआ लुकीच धीरे-धीरे चलकर मेहमानों से कुछ दूरी पर खड़ा हो गया। वह उनको तिरछी नज़रों से देख रहा था।

"हम लाल फ़ौज के हैं, बाबा... तुम हमसे डरो नहीं," शांत स्वर में सरदार फुसफुसाया। "हम गिरोह का पीछा कर रहे हैं, अपने लोगों से पिछड़ गये हैं... कल यहां से कोई दस्ता गुज़रा था, शायद तुमने देखा हो?"

"हां कोई गये तो थे इधर से।"

"बाबा, किधर गये वो?"

"शैतान जाने, मेरी बला से!"

"तुम्हारी चक्की में तो उनमें से कोई नहीं रहा?"

"नहीं," कहकर लुकीच ने उनकी ओर पीठ फेर ली।

"रुक बुड्ढे।" सरदार कूदकर घोड़े से उतर गया, टेढ़ी टांगों पर नशे में डगमगाया और मुंह से देसी वोद्का की तीखी बू छोड़कर बोला: "हम, बाबा, कम्युनिस्टों का सफ़ाया कर रहे हैं... हां-हां!.. और हम हैं कौन, यह तुम्हारी अक़्ल की बात नहीं!" उसे ठोकर लगी और लगाम हाथ से छूट गयी। "तुम्हारा काम बस सत्तर घोड़ों के लिए चारा देना और चुप रहना है... पलक झपकते ही हो जाना चाहिये यह काम!.. समझे? कहां है अनाज?"

"नहीं है," नजर चुराकर लुकीच बोला।

"उस कोठरी में क्या है?"

"कबाड़-बबाड़ भरा है... अनाज नहीं है!"

"चल ज़रा, देखूं मैं भी!"

बूढ़े का कालर पकड़कर घुटने से धक्के देता वह जमीन में धंसी टेढ़ी दीवारोंवाली कोठरी की ओर चल पड़ा। दरवाज़ा खोला। खत्तियों में गेहूं और जौ भरा था।

"क्या यह अनाज नहीं है, हरामी बुड्ढे?"

"अनाज है, अन्नदाता... पिसाई के लिये है... साल भर एक-एक दाना करके मैंने इसे जमा किया और तुम हो कि घोड़ों को खिलाना चाहते हो..."

"तो तू क्या चाहता है कि हमारे घोड़े भूखों मर जायें? तू क्या लालवालों का तरफ़दार है, अपनी मौत को बुलावा दे रहा है?"

"दया करो मुझ पर, भले आदमी! मेरा क़सूर क्या है?" टोपी उतारकर लुकीच घुटनों पर गिर पड़ा और सरदार के बालों से ढके हाथों को चूमने लगा...

"बोल: तुझे लालवाले पसंद हैं?"

"माफ़ करो मुझे, रहमदिल!.. मेरी बेवकूफ़ी माफ़ कर दो।

कर भी दो माफ़, मुझे मारो नहीं," सरदार की टांगों से लिपट कर बूढ़ा गिड़गिड़ाने लगा।

"सौगंध खा कि तू लालवालों का तरफ़दार नहीं है... नहीं, सलीब बनाने से काम नहीं चलेगा, मिट्टी खाकर दिखा!.."

बूढ़े ने मुट्ठी में रेत भरी और अपने पोपले मुंह में डालकर उसे चबाने लगा, उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बह रही थी।

"ठीक है, अब मैं यक़ीन करता हूं। चल, उठ बुड्ढे!"

बूढ़ा अपनी सुन्न टांगों पर खड़ा न हो पा रहा था। उसे इस हालत में देखकर सरदार हंसने लगा। उधर वहां जमा हुए घुड़सवार खत्तियों से निकालकर जौ और गेहूं घोड़ों के पैरों में डाल रहे थे, आंगन को सुनहरे दानों से पाट रहे थे।

५

कोहरे और धुंध से भरी भोर थी।

लुकीच संतरी की आंख बचाकर सिर्फ़ उसी को ज्ञात पगडंडी से, सड़क से नहीं, बीहड़ों और उनींदे वन को पार करता हुआ गांव की ओर दौड़ पड़ा।

पनचक्की के पास पहुंचकर वह बग़ल की गली से बड़ी सड़क पर मुड़ना चाहता ही था कि उसके सामने घुड़सवारों की धुंधली आकृतियां प्रकट हुईं।

"कौन है?" नीरवता में कड़कती आवाज़ सुनायी दी।

"मैं हूं..." लुकीच बुदबुदाया, हाथ-पांव फूल गये, थर-थर कांपने लगा।

"कौन हो? पास है? किस काम से घूम रहे हो?"

"चक्कीवाला हूं मैं... यहीं की पनचक्की से। काम से गांव जा रहा हूं।"

"किस काम से? चलो, कमांडर के पास! आगे-आगे चल..." घोड़े को आगे बढ़ाकर उनमें से एक चिल्लाया।

लुकीच को अपनी गर्दन पर घोड़े के गर्म-नम होंठों की अनुभूति हुई और वह लंगड़ाता हुआ गांव की ओर चल पड़ा।

चौक में खपरैल से ढके मकान के सामने वे रुक गये। संतरी कराह-कर घोड़े से उतरा और उसे बाड़ से बांधकर तलवार खड़खड़ाता ऊंचे ओसारे पर चढ़ा।

"मेरे पीछे-पीछे चलता आ!.."

खिड़कियों में रोशनी टिमटिमा रही थी। उन्होंने घर में प्रवेश किया।

लुकीच को तंबाकू के धुएं के मारे छींक आ गयी, उसने टोपी उतारकर झट से देवस्थान की ओर मुंह करके सलीब का चिन्ह बनाया।

"बुड्ढे को पकड़ा है। गांव में जा रहा था।"

निकोल्का ने मेज पर टिका अस्त-व्यस्त बालोंवाला अपना सिर उठाया, उनींदे, पर कड़े स्वर में पूछा:

"कहां जा रहा था?"

लुकीच आगे बढ़ा और खुशी के कारण उसे उच्छू आ गयी।

"अरे, यह तो अपने ही हैं, मैं तो सोच रहा था कि फिर से वो अधर्मी आ गये हैं... बहुत डर गया था, पूछते हुए भी डर लग रहा था... मैं चक्कीवाला हूं। जब मित्रोखिन के जंगल से तुम लोग जा रहे थे तो मेरे यहां ठहरे थे, मेरे प्यारे, मैंने तुमको दूध पिलाया था... क्या भूल गये?.."

"अच्छा, कहना क्या चाहते हो?"

"मेरे प्यारे, कहूंगा यह: कल शाम को वो गिरोहवाले मेरे यहां आकर घोड़ों को अनाज खिलाने लगे!.. मेरी हंसी उड़ाने लगे... और उनका सरदार बोला: हमारा साथ देने की शपथ ले, जबर्दस्ती मिट्टी खिलवायी मुझे।"

"इस वक़्त कहां है?"

"वहीं हैं। अपने साथ ढेरों वोद्का लाये हैं, पापी कहीं के, मेरे घर में पी रहे हैं और मैं दौड़ा-दौड़ा तुम्हें खबर करने आ गया, तुम्ही कुछ करो उनकी अक़्ल ठिकाने लगाने के लिए।"

"घोड़ों को तैयार करने को कह दो!.. बूढ़े की ओर मुस्कराता हुआ निकोल्का बेंच से उठा और थकान के साथ बरानकोट की आस्तीन खींची।

६

दिन निकल आया था।

रातों जागते रहने के कारण निकोल्का का चेहरा पीला पड़ गया था। वह घोड़े को दौड़ाता हुआ मशीनगनवाली बग्घी के पास जाकर बोला :

"जैसे ही हल्ला बोलेंगे तुम दायें बाज़ू पर मार करना। हमें उनका पहलू तोड़ना है!"

और मार्च के लिये तैयार स्क्वाड्रन की ओर चला गया।

मरियल बलूतों के कुंज के पीछे सड़क पर घुड़सवार दिखाई पड़े – चार-चार की पांतों में, बीच में मशीनगनोंवाली बग्घियां थीं।

"सरपट दौड़ाओ!" निकोल्का चिल्लाया और अपनी पीठ पीछे खुरों की बढ़ती गरज को महसूस करके उसने अपने घोड़े को चाबुक लगाया।

वन के आंचल पर मशीनगन बेतहाशा ठक-ठक करने लगी और वे जो सड़क पर थे तेज़ी से, जैसे कि युद्धाभ्यास के समय, बिखर गये।

* * *

तूफ़ान से गिरे पेड़ों के ढेर से निकलकर भेड़िया दौड़ता हुआ टीले पर चढ़ गया। उसके सारे बदन पर गोखरू चिपके हुए थे। थूथनी उठाकर उसने टोह ली। पास ही में धांय-धांय गोलियां चल रही थीं, चीत्कारों का नाद-निनाद सुनाई पड़ रहा था।

"ठक!" – आल्डर के कुंज में गोली चलती और कहीं टीले के पार से, जोतों के पार से प्रतिध्वनि बड़बड़ाती – "ठाक!"

और फिर: "ठुक, ठुक, ठुक" होने लगी। टीले के पार से जवाब में "ठाक! ठाक! ठाक!" सुनायी पड़ती।

भेड़िया कुछ देर तक खड़ा रहा, फिर धीरे-धीरे घाटी में, सूखी ऊंची घास में विलीन हो गया...

"संभालकर!.. मशीनगनों की बग्घियों को मत छोड़ना!.. झाड़ियों में... अरे झाड़ियों में चलो, तुम्हारी मां की!.." सरदार रक़ाब में खड़ा होकर चिल्ला रहा था।

पर मशीनगनों की बग्घियों के पास गाड़ीवान और मशीनगनचालक हड़बड़ी में रासें काट रहे थे, और मशीनगनों की निरंतर गोलीबारी से जगह-जगह टूटी पांत बिखरकर सिर पर पांव रखकर भाग पड़ी।

सरदार ने घोड़ा मोड़ा, उसकी ओर एक घुड़सवार अपने घोड़े को सरपट दौड़ाता, तलवार घुमाता आ रहा था। छाती पर झूलती दूरबीन और नमदे के लबादे को देखकर सरदार समझ गया कि यह मामूली लाल सैनिक नहीं है और उसने अपने घोड़े की लगाम खींची। दूर से ही उसे बिना मूंछोंवाला युवा चेहरा दिखायी पड़ा, क्रोध से विकृत, हवा के कारण मिची-मिची आंखें। सरदार का घोड़ा पिछली टांगें झुकाकर एक ही स्थान पर नाच पड़ा, पेटी में फंसी पिस्तौल को झटके से निकालकर वह चिल्लाया:

"दुधमुंहे पिल्ले!.. घुमा, घुमा अपनी तलवार, मैं तुझे दिखाता हूं!.."

सरदार ने तेज़ी से पास आते काले लबादे पर गोली चलायी। आठ-एक गज़ दौड़कर घोड़ा गिर पड़ा, निकोल्का ने लबादा उतार फेंका, वह गोलियां चलाता हुआ सरदार के पास आता जा रहा था...

झाड़-झंखाड़ के पीछे से किसी का वहशी चीत्कार अधूरा रह गया। बादल ने सूरज को ढक दिया और स्तेपी, सड़क, हवाओं और पतझड़ से ठिठुरते वन पर परछाइयां तैरने लगीं।

"बच्चा है, होंठों पर दूध अभी सूखा नहीं, ज़रूरत से ज्यादा गर्म-मिज़ाज है, इसीलिये अब इसे मौत अपने पंजों में दबोच लेगी," सरदार के दिमाग़ में रुक-रुककर ये विचार कौंध रहे थे और जब निकोल्का की पिस्तौल खाली हो गयी, तो सरदार ने लगाम छोड़ दी और चील की तरह उस पर झपट पड़ा।

ज़ीन से झुककर उसने तलवार घुमायी, प्रहार से धराशायी होती देह की उसे क्षणिक अनुभूति हुई। सरदार कूदकर घोड़े से उतरा, मृतक की गर्दन से लटकी दूरबीन उतारी, कंपकंपाती टांगों पर नज़र डाली। इधर-उधर देखकर वह झुककर मृतक से क्रोम-लेदर के बूट उतारने लगा। चटकते घुटने पर पैर टिकाकर उसने झट से एक बूट उतार डाला। दूसरा बूट नहीं उतर रहा था, शायद मोज़ा खिसक गया था, गुस्से में गाली देकर उसने झटके से मोजे सहित बूट उतार लिया। पैर पर, टखने से ऊपर उसे क़बूतरी के अंडे जितना बड़ा लच्छन

दिखायी पड़ा। धीरे-धीरे, मानो उसे डर हो कि कहीं जाग न जाये, उसने ठंडा पड़ता सिर घुमाकर चेहरा अपनी ओर मोड़ा, मुंह से कलकल बहती खून की धारा मे उसके हाथ सन गये। गौर से चेहरे को देखकर ही वह टेढ़े कंधों से लिपटकर भर्रायी आवाज में बोला:

"बेटे! .. निकोल्का, बेटे! .. मेरे लाल! .. मेरे कलेजे के टुकड़े! .."

नीला पड़कर वह चिल्लाया:

"कम से कम एक शब्द तो बोल! यह हो कैसे गया?"

बुझती आंखों, खून से तर पलकों को देखकर उसने अपना माथा पटका, फिर उठकर निर्जीव देह को झिंझोड़ने लगा... पर निकोल्का ने नीली जीभ कसकर दांतों में भींच रखी थी, मानो उसे डर था कि कहीं कोई बड़ी और अहम बात उसके मुंह से न निकल जाये।

सरदार ने बेटे के ठंडे पड़ते हाथों को छाती से लगाकर चूमा और दांतों में पिस्तौल की पसीजी नाल भींचकर अपने मुंह में गोली चला दी...

* * *

और शाम को जब झाड़ियों के पीछे से घुड़सवार प्रकट हुए, हवा उनके स्वरों और रकाबों की खड़खड़ को उड़ाकर पास लाने लगी, सरदार के बिखरे बालोंवाले सिर से एक गिद्ध अनिच्छा के साथ उड़ा। उड़कर वह शरत्कालीन धुंधले, बदरंग आकाश में विलीन हो गया।

१९२४

चरवाहा

१

धूप से झुलसी भूरी स्तेपी से सोलह दिनों से लू चल रही थी। जमीन जलकर कोयला बन गयी, घास पीली पड़ गयी, राजमार्ग के किनारे बने कुएं सूख गये; अनाज की बालियां पूरी खुलने से पहले ही मुरझाकर बूढ़ों की तरह झुक गयी।

दोपहर को ऊंघते गांव में घंटे की टन-टन गूंजने लगी।

कड़कती धूप और नीरवता का राज्य था। बस धूल उड़ाते क़दमों की आहट, ऊबड़-खाबड़ सड़क पर संभल-संभलकर चलते बूढ़ों की लाठियों की ठक-ठक सुनायी पड़ रही थी।

घंटा गांववालों को सभा का बुलावा दे रहा था। सभा में चरवाहे की नियुक्ति के सवाल को हल करना था।

कार्यकारिणी समिति में लोग मक्खियों की तरह भिनभिना रहे थे, तंबाकू का धुआं भरा था।

अध्यक्ष पेंसिल के टुकड़े से मेज़ को ठकठकाकर बोला:

"नागरिको! पुराने चरवाहे ने हमारे ढोर चराने से इंकार कर दिया, कहता है कि तनखा कम है। हम, कार्यकारिणीवाले, ग्रिगोरी फ़्रोलोव को इस काम पर रखने की सिफ़ारिश करते हैं। यहीं पैदा हुआ, अनाथ है, कोम्सोमोल का सदस्य है... बाप उसका, जैसा कि सब जानते हैं, मोची था। वह बहन के साथ रहता है, पेट भरने को उनके पास कुछ है नहीं। मेरे ख़याल से आप लोग उसकी हालत पर रहम करके उसे ढोर चराने का काम दे दोगे।"

बुड्ढे नेस्तेरोव से चुप न रहा गया, चुलबुलाकर वह बोला:

"हम यह नहीं कर सकते... झुंड बड़ा है, और वह भी कोई चरवाहा है! .. दूर ले जाकर चराना है क्योंकि आस-पास चारा है नहीं और उसे यह काम आता नहीं। पतझड़ तक आधे बछड़े भी नहीं बचेंगे..."

इग्नात चक्कीवाला, घाघ बुड्ढा, विद्वेषपूर्ण स्वर में शक्कर घोलकर बोला:

"चरवाहा हम कार्यकारिणी के बिना भी ढूंढ़ लेंगे, यह हमारा अपना मामला है... और आदमी हमें ऐसा चुनना चाहिये जो बूढ़ा, भरोसेमंद हो, ढोरों की देखभाल करना जानता हो..."

"ठीक कहा, दादा..."

"अगर बुड्ढे को रखोगे तो और भी जल्दी बछड़ों से हाथ धो बैठोगे... अब वह ज़माना नहीं रहा, सब जगह चोर-उचक्कों की कोई कमी नहीं..." अध्यक्ष दृढ़ता के साथ बोला। पीछे से लोगों ने उसका समर्थन किया:

"बुड्ढे से काम नहीं चलेगा... यह भी ध्यान में रखो कि ये गायें नहीं बल्कि जवान बछड़े हैं। कुत्ते की तरह फुर्तीली टांगों की ज़रूरत है उन्हें चराने के लिये। झुंड बिदक गया, तो बुड्ढा दौड़ते हुए अपनी बत्तीसी खो बैठेगा..."

ठहाके गूंज उठे, पर बुड्ढा इग्नात अपनी बात मनवाने के लिये दबे स्वर में बोला:

"कम्युनिस्टों का यहां कोई काम नहीं... यह काम तो पूजा-पाठ के साथ किया जाता है, ऐसे-वैसे नहीं..." और खूसट बुड्ढे ने अपनी टांट पर हाथ फेरा।

पर अध्यक्ष फ़ौरन सख़्ती से बोला:

"इस तरह की बातें नहीं चलेंगी... इस तरह की... ऐसी बातों के लिये... सभा से बाहर निकाल दूंगा..."

प्रातः, जब चिमनियों से मैली रुई के चिथड़ों की तरह निकलकर धुआं चौक में फैलकर छाने लगता है, ग्रिगोरी ने डेढ़ सौ ढोरों का झुंड जमा किया और गांव की गलियों से हांककर सलेटी, मनहूस टीले की ओर चल पड़ा।

स्तेपी भूरी फुंसियों की तरह मारमोटों के बिलों से ढकी थी, मारमोट चौकन्ने होकर सीटियां-सी बजा रहे थे; घाटियों की नीची घास में दुबके हुकना पक्षी अपने रुपहले डैने चमकाते हुए फुर्र से उड़ रहे थे।

झुंड शांति से जा रहा था। झुर्रीदार पपड़ी से ढकी ज़मीन पर बछड़ों के खुर बारिश की तरह टप-टप कर रहे थे।

ग्रिगोरी के साथ उसकी बहन दून्या मददगार की हैसियत से जा रही थी। उसका अंग-अंग – धूप से सांवले गाल, आंखें, होंठ – सब हंस रहे थे, उसे सत्रहवां साल लगा था और सत्रह साल की उम्र में तो बात-बात पर हंसी आती है: भाई के फूले मुंह और लम्बे कानों-वाले बछड़ों को देखकर, जो जंगली घास चबाते चल रहे थे, उसे हंसी आ रही थी, इस बात तक पर हंसी आ रही थी कि दो दिन से उन्हें रोटी का एक टुकड़ा तक नसीब नहीं हुआ।

पर ग्रिगोरी नहीं हंस रहा था। फटी-पुरानी टोपी के नीचे से ग्रिगोरी का झुर्रियों से ढका चौड़ा माथा दिखायी पड़ रहा था, आंखों में थकान की झलक थी, मानो वह उन्नीस बरस का नहीं बल्कि बूढ़ा हो चला हो।

चित्तीदार लहरों की तरह उमड़ता झुंड रास्ते के किनारे-किनारे चला जा रहा था।

ग्रिगोरी ने पीछे छूटे बछड़ों को सीटी बजाकर उकसाया और दून्या की ओर मुड़कर बोला:

"पतझड़ तक, दून्या, अनाज कमा लेंगे और फिर शहर चले जायेंगे। मैं मज़दूर फ़ैकल्टी में भरती हो जाऊंगा और तेरे लिये भी कोई प्रबंध कर दूंगा... शायद किसी कोर्स-वोर्स में दाखिला दिलवा दूंगा... शहर में, दून्या, बहुत किताबें होती हैं और रोटी भी वहां साफ़ होती है यहां की तरह घास-फूस मिली नहीं।"

"पर पैसे कहां से लायेंगे... शहर जाने के लिये?"

"तू भी बड़ी भोंदू है... हमें बीस पूद* गेहूं मिलेगा, क्या यह पैसे नहीं हैं... पूरे रूबल के हिसाब से एक-एक पूद बेच देंगे, फिर बाजरा और उपले भी बेच देंगे।"

ग्रिगोरी रुककर चाबुक की मूठ से सड़क की धूल पर हिसाब-किताब करने लगा।

"ग्रिगोरी, हम खायेंगे क्या? रोटी बिलकुल नहीं है..."

"मेरे झोले में पुए का सूखा टुकड़ा बचा है।"

---

* पूद – पुराना रूसी तौल जो १६ किलोग्राम के बराबर होता था। – अनु०

"आज तो खा लेंगे पर कल क्या करेंगे?"

"कल गांव से हमारे लिये आटा आ जायेगा... अध्यक्ष ने वायदा किया है..."

दोपहर का सूरज आग बरसा रहा था। ग्रिगोरी की टाट से बुनी क़मीज़ पसीने से तर होकर उसके मोढ़ों से चिपक गयी।

ढोरों का झुंड बेचैनी से चला जा रहा था, डांस-मक्खियां बछड़ों को काट रही थीं, तपी हवा ढोरों के रंभाने और डांसों के भिनभिनाने से गूंज रही थी।

शाम को सूर्यास्त से पहले वे बाड़े के पास पहुंच गये। पास ही में जोहड़ था और बारिशों के कारण गले फूस की कुटिया थी।

ग्रिगोरी दौड़कर आगे गया और हांफते हुए उसने बाड़े का टहनियों से बना फाटक खोल दिया।

वह बछड़ों को गिनता हुआ एक-एक करके फाटक के काले चौकोर के भीतर हांक रहा था।

२

जोहड़ के पास के टीले पर उन्होंने नयी कुटिया बनायी। दीवारों पर गोबर लीपा और ग्रिगोरी ने फूस का छप्पर डाल दिया।

अगले दिन अध्यक्ष घोड़े पर सवार होकर आया। वह आधा पूद मकई का आटा और एक झोला बाजरा लाया।

छांव में बैठकर उसने सिगरेट सुलगायी और बोला:

"लड़का तू भला है, ग्रिगोरी। बस, किसी तरह झुंड की रखवाली कर ले, पतझड़ में हम क्षेत्रीय केन्द्र चलेंगे। वहां से शायद तुझे पढ़ने के लिये भिजवाने का प्रबंध हो जाये... वहां लोक शिक्षा विभाग में मेरी जान पहचान का एक आदमी है, वह मदद कर देगा..."

ग्रिगोरी का चेहरा खुशी से चमक उठा। विदा करते समय उसने अध्यक्ष को घोड़े पर चढ़ने में मदद दी और कसकर हाथ मिलाया। बड़ी देर तक वह घोड़े के खुरों से उड़ती धूल के गुबार को देखता रहा।

प्रातःकालीन बयार से कुछ राहत पाने के बाद दोपहर को सूखी

स्तेपी का तपती गर्मी से दम घुटने लगता। पीठ के बल लेटकर ग्रिगोरी नीली-सी धुंध से ढके टीले को देखता, उसे लगता कि स्तेपी एक जीवधारी के समान है और वह गांवों, क़स्बों और शहरों के भारी बोझ से कष्ट झेल रही है। लगता कि धरती की छाती सांस लेते हुए निरंतर हिल रही है, और कहीं नीचे, भूगर्भ में कोई अज्ञात जीवन पूरी गति से चल रहा है।

और दिन के उजाले में भी उसका दिल दहल जाता।

नज़रों से टीलों की अपार शृंखला को नापता, उन पर छायी धुंध, कत्थई घास पर फैले झुंड को देखता और सोचता कि वह इस दुनिया से कटकर कहीं दूर चला गया है।

शनिवार की शाम को ग्रिगोरी ने ढोरों को बाड़े में बंद किया। दून्या कुटिया के पास आग जलाकर बाजरे और खुशबूदार जंगली साग की खिचड़ी बना रही थी।

ग्रिगोरी आग के पास बैठ गया और सौंधी गंध छोड़ते उपलों को चाबुक की मूठ से कुरेदकर बोला:

"ग्रीशा की बछिया बीमार पड़ गयी। मालिक को इसकी खबर पहुंचवानी चाहिये।"

"मैं जाऊं गांव को?" दून्या ने कृत्रिम उदासीनता से पूछा।

"जरूरत नहीं है। अकेला झुंड को नहीं संभाल पाऊंगा..." मुस्कराकर पूछा: "क्या लोगों से मिलने को जी कर रहा है?"

"हां, ग्रिगोरी भइया... एक महीने से स्तेपी में रह रहे हैं, बस एक बार किसी आदमी के दर्शन हुए। अगर पूरी गर्मी हमने यहीं बिता दी तो बोलना ही भूल जायेंगे..."

"सब्र कर, दून्या... पतझड़ में शहर चले जायेंगे। हम दोनों पढ़ेंगे और पढ़ाई पूरी करके यहां लौटेंगे। विज्ञान जैसे कहता है वैसे खेती करना शुरू करेंगे, नहीं तो यहां कितना अंधेरा है, लोग सोये-से पड़े हैं... सब अनपढ़ हैं... किताबें नहीं हैं..."

"हमें भरती नहीं करेंगे... हम भी तो अनपढ़ हैं..."

"हमें ले लेंगे। सर्दियों में जब मैं क़स्बे में गया था, मैंने कोम्सोमोल इकाई के सचिव के यहां लेनिन की किताब पढ़ी थी। उसमें कहा गया है कि सत्ता सर्वहारा की है, और पढ़ाई के बारे में भी लिखा है कि उनको पढ़ना चाहिये जो ग़रीबों की संतान हैं।"

ग्रिगोरी घुटनों के बल उचका, उसके गालों पर लपटों का लाल प्रकाश चमका।

"हमें पढ़ना चाहिये ताकि अपने जनतंत्र का काम चलाना सीख सकें। शहरों में तो सत्ता मजदूरों के हाथों में है, पर हमारे यहां क़स्बे का अध्यक्ष कुलक है और गांवों में भी अमीर लोग अध्यक्ष बन बैठे हैं ..."

"ग्रिगोरी, मैं कपड़े धोकर, महरी का काम करके कमाऊंगी और तुम पढ़ना ..."

उपले धुआं छोड़ते, फुफकारते सुलग रहे थे। स्तेपी ऊंघती मौन पड़ी थी।

३

क्षेत्रीय केन्द्र जानेवाले मिलीशियामैन के हाथ कोम्सोमोल इकाई के सचिव पोलीतोव ने ग्रिगोरी को क़स्बे आने का बुलावा भेजा था।

ग्रिगोरी पौ फटने से पहले ही रवाना हो गया और दोपहर को टीले से उसे गिरजाघर का घंटा और पुआल व टीन की छतोंवाले मकान दिखायी पड़े।

बिवाइयों से भरे पैरों को घसीटता हुआ वह चौक पर पहुंचा।

क्लब पादरी के घर में था। ताज़ी पुआल की सुगंध छोड़ती नयी चटाइयों पर चलकर उसने बड़े कमरे में प्रवेश किया।

खिड़कियों के पट बंद होने के कारण कमरे में धुंधला-सा प्रकाश था। खिड़की के पास पोलीतोव रंदा चला रहा था – चौखट बना रहा था।

"सुना है मैंने, भाई, सुना है ..." मुस्कराकर अपना पसीजा हाथ बढ़ाकर वह बोला। "चलो और क्या कर सकते हैं! मैंने क्षेत्रीय केन्द्र से पता करवाया था: वहां तेल पेरने की फ़ैक्टरी में जवान लड़कों की ज़रूरत थी, पता चला कि उन्होंने ज़रूरत से ज़्यादा बारह लोगों को भरती कर लिया ... अभी झुंड की रखवाली कर लो और पतझड़ में तुम्हें पढ़ने के लिये भेज देंगे।"

"ग़नीमत है कि यह काम ही मिल गया ... गांव के कुलक मुझे

क़तई भी चरवाहे का काम नहीं सौंपना चाहते थे ... कहते थे कोम्सोमोल का है, अधर्मी, पूजा-पाठ के बिना चरायेगा ..." ग्रिगोरी ने थकान भरी हंसी के साथ बताया।

पोलीतोव आस्तीन से बुरादे को हटाकर खिड़की के दासे पर बैठ गया। पसीने से भीगी भौंहों को सिकोड़कर वह ग्रिगोरी को निहारने लगा।

"ग्रिगोरी, तुम बहुत दुबले हो गये ... राशन-पानी का क्या हाल है तुम्हारे पास?"

"पेट भरने को है।"

दोनों चुप हो गये।

"चलो, मेरे यहां चलें। तुम्हें कुछ पढ़ने को दूंगा: क्षेत्रीय केन्द्र से अख़बार और किताबें मिली हैं।"

वे क़ब्रिस्तान से सटी सड़क पर जा रहे थे। राख के सलेटी ढेरों में मुर्गियां नहा रही थीं, कहीं ढेंकली चरमरा रही थी और बस कानों में सन्नाटा गूंज रहा था।

"तुम आज यहीं रुक जाना। सभा होगी। लड़के तुम्हारे बारे में पूछ रहे थे कि ग्रिगोरी कहां है, क्या हाल-चाल हैं उसके? उनसे भी मिल लोगे ... आज मैं अंतर्राष्ट्रीय स्थिति के बारे में व्याख्यान दूंगा ... रात को मेरे यहां सोना और कल चले जाना। ठीक है?"

"मैं रात को नहीं ठहर सकता। दून्या अकेली झुंड को नहीं संभाल पायेगी। सभा में जाऊंगा और जैसे ही ख़त्म होगी रात को ही चला जाऊंगा।"

पोलीतोव की ड्योढ़ी में ठंडक थी।

सूखे सेबों की मीठी सुगंध और दीवारों पर टंगे जुओं और रासों से घोड़े के पसीने की बू आ रही थी।

कोने में – क्वास* से भरी लकड़ी की बालटी और पास ही में टेढ़ी चारपाई थी।

"यह रहा मेरा कोना: अंदर कमरे में गर्मी है ..."

पोलीतोव ने झुककर तिरपाल के नीचे से सावधानी के साथ

---

* रई नामक अनाज की डबलरोटी से बना पेय। – सं०

'प्राव्दा' के पुराने अंक और दो पुस्तिकायें निकालीं।

उन्हें ग्रिगोरी को थमाकर उसने पैबंद लगी बोरी का मुंह खोला और बोला:

"पकड़ो ..."

ग्रिगोरी बोरी का सिरा पकड़े हुए था पर आंखें अखबार की पंक्तियों पर फिसल रही थीं।

पोलीतोव मुट्ठी भर-भर कर आटा डाल रहा था। आधी भरी बोरी को ठसका देकर वह दौड़ा-दौड़ा कमरे में गया।

बैकफ़ैट के दो टुकड़े लाया, बंद गोभी के सूखे पत्ते में लपेटकर उन्हें बोरी में रख दिया और बुदबुदाया:

"घर जाओगे तो यह लेते जाना!"

"नहीं, मैं यह नहीं लूंगा ..." ग्रिगोरी भड़क उठा।

"कैसे नहीं लोगे?"

"कह दिया न लूंगा ..."

"बौड़म कहीं का!" पोलीतोव ग्रिगोरी पर नज़रें गड़ाकर चिल्लाया। उसका चेहरा सफ़ेद पड़ गया। "कहने को तो साथी कहलाता है! भूखा मर जायेगा पर चूं नहीं करेगा। ले ले नहीं तो दोस्ती खतम आज से ..."

"मैं तुम्हारे मुंह का कौर नहीं छीनना चाहता ..."

"मुंह का कौर छिने दुश्मनों का बातें ..." पोलीतोव ग्रिगोरी को गुस्से में बोरी का मुंह बांधते देखकर कुछ नर्म स्वर में बोला।

सभा पौ फटने से कुछ पहले ही समाप्त हुई।

ग्रिगोरी स्तेपी में चला जा रहा था। कंधे पर आटे की बोरी का बोझ था, छिले पांवों में जलन हो रही थी पर वह प्रभात की लालिमा की ओर उत्साह और उमंग के साथ क़दम बढ़ाता चल रहा था।

४

सुबह दून्या आग जलाने के लिये सूखा गोबर बीनने के लिये कुटिया से निकली। ग्रिगोरी बाड़े की ओर से सरपट दौड़ा आ रहा था। दून्या का माथा ठनका।

"क्या कुछ हो गया?"

"ग्रीशा की बछिया मर गयी ... और तीन ढोर बीमार पड़ गये।" दम लेकर बोला: "दून्या, जा गांव। ग्रीशा और बाक़ी लोगों को कह दे कि आज ही आ जायें ... ढोरों को बीमारी लग गयी है।"

जल्दी से सिर पर रूमाल बांधकर टीले के पीछे से उगते सूरज की ओर पीठ करके दून्या टेकरी के रास्ते चल पड़ी।

उसको विदा करके ग्रिगोरी धीरे-धीरे बाड़े की ओर चल पड़ा।

झुंड घाटी में चला गया था और बाड़ के पास तीन बछड़े पड़े थे। दोपहर को तीनों मर गये।

ग्रिगोरी पागलों की तरह झुंड और बाड़े के बीच दौड़ रहा था: और दो बछड़े बीमार पड़ गये ...

एक बछिया जोहड़ के पास कीचड़ में गिर गयी; ग्रिगोरी की ओर मुड़कर करुण स्वर में रंभाने लगी; सूजी आंखों में आंसू भरे थे, उधर ग्रिगोरी के धूप से सांवले गालों पर खारे आंसू टप-टप बह रहे थे।

सांझ ढलने पर दून्या मालिकों के साथ लौटी। ...

वृद्ध अर्तेमिच निर्जीव बछिया को लाठी से छूकर बोला:

"छूत की बीमारी है यह ... अब सारा झुंड बीमार हो जायेगा।"

खाल उतारकर लोथें उन्होंने जोहड़ से कुछ दूर गाड़ दीं। सूखी काली मिट्टी से छोटा-सा टीला बना दिया।

और अगले दिन फिर दून्या को गांव जाना पड़ा। एक साथ सात बछड़े बीमार पड़ गये। ...

काले दिनों का तांता लग गया। बाड़ा सूना हो गया। ग्रिगोरी के मन में भी सूनापन छा गया। डेढ़ सौ डंगरों में से पचास बचे थे। छकड़ों पर मालिक आते, मरे बछड़ों की खाल उतारते, घाटी में उथले गड्ढे खोदते, खून में लथपथ लोथें मिट्टी से ढककर चले जाते। झुंड अनिच्छा के साथ बाड़े में जाता, बछड़े खून और उनके बीच रेंगती अदृश्य मौत की अनुभूति से चीख-चीखकर रंभाते।

तड़के, जब सूखकर पीला पड़ा ग्रिगोरी बाड़े का चरमराता फाटक खोलता, झुंड चरने के लिये जाते समय क़ब्रों के सूखे टीलों के बीच से होकर जाता।

सड़ते मांस की दुर्गंध, बेचैन ढोरों के खुरों से उड़ती धूल, उनका

असहाय क्रंदन छा जाता, और तपता सूरज धीरे-धीरे स्तेपी पार अपने अभियान पर चल पड़ता।

गांव से शिकारी आये। बाड़ के चारों ओर उन्होंने गोलियां चलायीं: भयंकर बीमारी को डराने के लिये। पर बछड़े मरते ही जा रहे थे और हर दिन के साथ झुंड घटता ही जा रहा था।

ग्रिगोरी ने ध्यान दिया कि कहीं-कहीं क़ब्रें खुली हुई हैं, पास ही में चबी हड्डियां पड़ी हैं। रात को बछड़े बेचैन रहते, डरपोक हो गये थे।

रात की नीरवता में अचानक वहशी चीत्कार सुनायी पड़ता और झुंड बाड़ को तोड़ता बाड़े में दौड़ने लगता।

बछड़ों ने टहनियों से बनी बाड़ों को गिरा दिया, झुंड बनाकर कुटिया के पास आ जाते। आग के पास आहें छोड़ते, घास की जुगाली करते सो जाते।

ग्रिगोरी कुछ समझ नहीं पा रहा था। एक बार उसकी नींद कुत्ते के भौंकने से टूटी। उसने चलते-चलते भेड़ की खाल का ओवरकोट पहना और झट से कुटिया के बाहर आया। वह बछड़ों की, ओस में भीगी बग़लों से टकराया।

दरवाजे के पास कुछ देर खड़े-खड़े उसने कुत्तों के लिये सीटी बजायी और उत्तर में उसे गद्यूची घाटी से भेड़ियों का लम्बा समवेत चीत्कार सुनायी पड़ा। टीले गिर्द उगी झाड़ियों से एक और हुंकारा...

कुटिया में घुसकर उसने दीया जलाया।

"दून्या, सुन रही है?"

प्रातः तारों के साथ ये आवाज़ें भी बुझ गयीं।

५

सवेरे इग्नात चक्कीवाला और मिखेई नेस्तेरोव आये। ग्रिगोरी कुटिया में बैठा चप्पलों की मरम्मत कर रहा था। बूढ़े अंदर आये। बूढ़े इग्नात ने टोपी उतारी, कुटिया के कच्चे फ़र्श पर पड़ती सूर्य की तिरछी किरणों की चमक से आंखें मिचमिचायीं और हाथ उठाया— वह कोने में लटकी, लेनिन की छोटी-सी तस्वीर के सामने सलीब का

निशान बनाना चाहता था। ध्यान से देखकर उसने अपना हाथ झट से जेब में ठूंस लिया। गुस्से में थूककर बोला:

"यह बात है... देव-प्रतिमा मतलब तेरे पास नहीं है?.."

"नहीं है..."

"उसके स्थान पर यह किसकी तस्वीर लटकी है?"

"लेनिन की।"

"तो यही वजह है हमारी मुसीबतों की... भगवान यहां नहीं हैं इसीलिये बीमारी झट से आन पड़ी... इसी वजह से तो बछड़े मर गये... ओहो-हो, हमारे महाराजाधिराज..."

"दादा, बछड़े इसलिये मरे कि ढोरों के डाक्टर को नहीं बुलवाया।"

"पहले तुम्हारे डागडरों के बिना ही रहते थे... बहुत अक़लमंद बनता है तू... पूजा-पाठ वग़ैरह करता तो ढोरों के डागडर की कोई जरूरत न पड़ती।"

मिखेई नेस्तेरोव नज़रें घुमाकर चिल्लाया:

"उतार दे यहां से इस अधर्मी की तस्वीर!.. तेरी वजह से, पापी, झुंड मर गया।"

ग्रिगोरी का चेहरा हल्का-सा सफ़ेद पड़ गया।

"अपने घर चलाना हुक्म... गला फाड़ने की जरूरत नहीं... यह सर्वहारा के नेता हैं..."

मिखेई नेस्तेरोव को ताव आ गया, वह तमतमाकर चिल्लाया:

"हमारा खाता है—हमारी तरह ही कर... जानते हैं हम तुम जैसों को... देखते रहना, नहीं तो जल्दी ही अक्ल ठिकाने लगा देंगे।"

उन्होंने बाहर निकलकर टोपी पहनी और बिना कुछ कहे चले गये।

दून्या सहमी-सहमी भाई का मुंह ताकती रह गयी।

एक दिन बाद तीख़ोन लोहार गांव से आया, अपनी बछिया को देखने के लिये।

कुटिया के पास उकड़ूं बैठकर सिगरेट पीता हुआ, कड़वी मुस्कान के साथ बताने लगा:

"ज़िंदगी हमारी बहुत बुरी है... पुराने अध्यक्ष को हटा दिया है, अब मिखेई नेस्तेरोव का दामाद हुक्म चलाता है। बस, अपने ढर्रे पर लौटा रहे हैं... कल ज़मीन का बंटवारा कर रहे थे: जैसे ही किसी

ग़रीब के हिस्से अच्छी ज़मीन आती वे फिर से बंटवारा शुरू कर देते। अमीर फिर से हमारी गर्दन पर बैठ रहे हैं ... ग्रिगोरी प्यारे, सारी बढ़िया ज़मीनें उन्होंने ख़ुद हथिया लीं। और हमारे हिस्से दुम्मट ज़मीन पड़ी ... ये बातें हैं ..."

ग्रिगोरी आधी रात तक आग के पास बैठा हुआ मकई के चौड़े-चौड़े पीले पत्तों पर कोयले के टुकड़े से लिखता रहा। उसने ज़मीन के अन्यायपूर्ण बंटवारे के बारे में लिखा, यह भी लिखा कि ढोरों की बीमारी का इलाज जानवरों के डाक्टर से करवाने के बजाय गोलियां चलायीं। लिखावट से भरे मकई के पत्तों का बंडल तीख़ोन लोहार को थमाते हुए बोला :

"अगर शहर जाना हुआ तो पूछ लेना कि 'क्रास्नया प्राव्दा' अख़बार कहां छपता है। उन्हें यह दे देना ... मैंने विस्तार से लिखा है, बस मोड़ना नहीं, नहीं तो कोयला मिट जायेगा ..."

लोहार ने अपनी जली, कोयले से काली उंगलियों से खड़खड़ाती पत्तियों को संभालकर पकड़ा और दिल के पास क़मीज़ के अंदर छिपा लिया। विदा लेते हुए वह उसी मुस्कान के साथ बोला :

"पैदल जाऊंगा शहर, शायद वहां मुझे सोवियत सत्ता मिल जाये ... तीन दिन में मैं डेढ़ सौ वेर्स्ता का रास्ता तय कर लूंगा। एक हफ़्ते बाद लौटते ही तुम्हें ख़बर कर दूंगा ..."

६

बारिशों और नम कोहरे के साथ पतझड़ का मौसम आ गया था।

दून्या खाने का सामान लाने के लिये सवेरे से गांव गयी हुई थी।

बछड़े पहाड़ी की ढलान पर चर रहे थे। ग्रिगोरी कंधों पर चोग़ा डाले उनके पीछे-पीछे चल रहा था, हथेली में वह मुरझायी घास के डंठलों को मसल रहा था। पतझड़ की छोटी सांझ से कुछ पहले टीले से दो घुड़सवार उतरे।

घोड़ों के खुरों की छप-छप सुनायी दी और वे ग्रिगोरी के पास चले आये।

ग्रिगोरी ने उन्हें पहचान लिया। एक अध्यक्ष था – मिख़ेई नेस्तेरोव का दामाद और दूसरा इग्नात चक्कीवाले का बेटा था।

उनके घोड़े झाग से ढके थे।

"नमस्ते, चरवाहे! .."

"नमस्ते! .."

"हम तुम्हारे पास आये हैं ..."

अध्यक्ष घोड़े की ज़ीन पर बैठे-बैठे बड़ी देर तक अपनी ठंड से ठिठुरी उंगलियों से फ़ौजी ग्रेटकोट के बटन खोलता रहा; उसने अख़बार का पीला पृष्ठ निकाला और हवा में उसे खोलकर बोला :

"तूने यह लिखा था?"

ज़मीन के बंटवारे, ढोरों की बीमारी के बारे में मकई के पत्तों से उतरे शब्द ग्रिगोरी की आंखों के सामने तैरने लगे।

"चल, हमारे साथ!"

"कहां?"

"यहीं, घाटी में ... एक बात करनी है ..." अध्यक्ष के नीले होंठ फड़क रहे थे, आंखें इधर-उधर दौड़ रही थीं।

ग्रिगोरी मुस्कराकर बोला : "जो कहना है, यहीं कह दो।"

"यहां भी कह सकते हैं ... अगर तू चाहता है ..."

उसने जेब से पिस्तौल निकाली ... मचलते घोड़े की लगाम खींचते हुए वह फटे स्वर में चिल्लाया : "क़मीने, अख़बारों में लिखेगा तू?"

"तुम यह क्यों कर रहे हो? .."

"इसलिये कि तेरी वजह से मुझ पर मुक़दमा चलेगा! चुग़ली करेगा?.. बोल, कम्युनिस्ट हरामी! .."

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना उसने ग्रिगोरी के बंद मुंह पर गोली चला दी।

ग्रिगोरी पिछली टांगों पर खड़े घोड़े के नीचे ढह गया, आह भरकर उसने अकड़ी उंगलियों से पीली-नम घास का गुच्छा उखाड़ा और चिर-निद्रा में सो गया।

इग्नात चक्कीवाले का बेटा ज़ीन से कूदकर उतरा, उसने मुट्ठी में काली मिट्टी उठायी और फेनिल ख़ून से भरे मुंह में ठूंस दी ...

स्तेपी तो अपार है, भला कभी किसी ने उसे नापा है। यहां असंख्य सड़कें और पगडंडियां बिछी हैं। पतझड़ की रात अंधेरे से भी काली है और बारिश तो घोड़ों के खुरों के निशान बिलकुल मिटा देगी। ..

७

स्तेपी की सड़क है, फुहार पड़ रही है, झुटपुटा छाया है।

उस राही को चलने में क्या कठिनाई जिसके कंधे पर टंगे नन्हे-से झोले में जौ की रोटी का टुकड़ा और हाथ में लाठी है।

दून्या सड़क के किनारे-किनारे जा रही है। हवा फटी जाकट के पल्लुओं को फड़फड़ा रही है, पीछे से रुक-रुककर धक्का दे रही है।

चारों ओर बियाबान मनहूस स्तेपी फैली है। अंधेरा छाने लगा है।

सड़क से कुछ दूर टीला दृष्टिगोचर होता है और उस पर जंगली घास के बिखरते छप्परवाली कुटिया।

दून्या शराबियों की तरह लड़खड़ाती हुई धंसी क़ब्र के पास जाती है और औंधे मुंह उस पर लेट जाती है।

रात घिर आयी है...

दून्या सीधे स्टेशन जानेवाले रास्ते पर चलती जा रही है।

उसको चलने में कोई कठिनाई नहीं हो रही क्योंकि कंधे पर लटके झोले में जौ की रोटी का टुकड़ा, स्तेपी की कसैली धूल की गंध छोड़ती फटी-पुरानी किताब और भाई ग्रिगोरी की सूती क़मीज़ है।

जब दिल उदासी से भर जाता है, आंसुओं से आंखें जलने लगती हैं, तब वह कहीं एकांत में, परायी नज़रों से छिपाकर झोले से मैली क़मीज़ निकालती है... उसे चेहरे से सटा लेती है और भाई के पसीने की सुखद गंध को महसूस करती है... देर तक वह ऐसे ही पड़ी रहती है...

एक के बाद एक वेर्स्ता पीछे छूटते जा रहे हैं। स्तेपी के बीहड़ों से भेड़ियों का चीत्कार सुनायी पड़ रहा है और दून्या सड़क के किनारे-किनारे चली जा रही है, वह शहर जा रही है, जहां सोवियत सत्ता है, जहां सर्वहारा पढ़ते हैं ताकि अपने जनतंत्र का संचालन करना सीख सकें।

लेनिन की पुस्तक में यही कहा गया है।

१९२५

हरामी

मीश्का ने स्वप्न में देखा कि दादा ने बगीचे में चेरी की एक अच्छी कमची काट ली है। वे कमची, हिलाते हुए उसकी तरफ़ आ रहे हैं और डांटते हुए कह रहे हैं:

"हां, इधर तो आ ज़रा मिख़ाईल फ़ोमीच! अगर तेरे चूतड़ों पर मार-मारकर यह कमची न तोड़ी तो कहना!"

"किसलिये दादा?" मीश्का ने पूछा।

"इसीलिये कि तूने कलगीवाली मुर्ग़ी के दरबे से सारे अण्डे चंपत कर दिये और उन्हें ले गया हिण्डोले पर झूलने के लिये!"

"दादा, इस साल तो मैं हिण्डोले पर एक बार भी नहीं झूला!" मीश्का डर के मारे चीख़ उठा।

मगर दादा ने अकड़कर अपनी दाढ़ी पर गम्भीर ढंग से हाथ फेरा और पांव पटककर धमकाते हुए बोले:

"शरारती कहीं का! कर पाजामा ढीला, तेरी चमड़ी उधेड़ूं!"

मीश्का चीख़ उठा और उसकी आंख खुल गयी। उसका दिल ज़ोर से धक-धक कर रहा था मानो सचमुच ही कमचियों से ख़बर ली गयी हो। बड़ी होशियारी से उसने बायीं आंख खोली। देखा कि घर में उजाला हो चुका है। सुबह की किरणें खिड़कियों से झांक रही थीं। मीश्का ने सिर उठाया तो उसे ड्योढ़ी में से कई आवाज़ें सुनायी दीं – मां ख़ुशी से चीख़ रही थी, कुछ कहती जा रही थी, हंसी के मारे उसका बुरा हाल हुआ जा रहा था, दादा खांस रहे थे और एक अजनबी-सी आ-वाज़ भी सुनायी दे रही थी, "बू-बू-बू..."

मीश्का ने आंखें मलीं और देखा – दरवाज़ा खुला, ज़ोर से बन्द हुआ, दादा लपककर भीतर आये, उछलते हुए। उनका चश्मा उनकी नाक पर नाच रहा था। मीश्का ने सोचा कि भजनीकों के साथ पादरी आये होंगे (ईस्टर के दिनों में जब पादरी आते थे तो दादा इसी तरह

भागे-भागे फिरा करते थे)। दादा के पीछे-पीछे एक लम्बा-तड़ंगा और हट्टा-कट्टा फ़ौजी अन्दर आया। वह काला फ़ौजी कोट और फ़ीतोंवाली टोपी पहने था। मां उसके गले से लिपटकर रो रही थी।

घर के ठीक बीच में इस अजनबी ने मां को झटककर गले से अलग किया और ऊंची आवाज़ में पूछा:

"कहां है मेरी सन्तान?"

मीश्का घबराकर कम्बल के नीचे दुबक गया।

"तुम क्या सो रहे हो? अरे बेटा, तेरा बाप फ़ौज से आया है," मां ने पुकारकर कहा।

मीश्का आँख भी न झपका पाया कि फ़ौजी ने उसे जा दबोचा, छत तक उछाल दिया और फिर सीने से चिपका लिया। वह जब उसे अपनी लाल-लाल मूंछों से प्यार करने लगा तो बस कुछ न पूछिये – होंठों, गालों और आंखों की मुसीबत ही आ गयी। मूंछें उसकी कुछ-कुछ नम थीं, नमकीन-सी। मीश्का ने छूट निकलने की पूरी कोशिश की, मगर उसकी एक न चली।

"अरे वाह, तू तो अच्छा-खासा बोल्शेविक हो गया है!.. जल्द ही बाप से बाज़ी मार जायेगा!.. हो-हो-हो!.." बाप ज़ोर से हंसा और लगा मीश्का को झुलाने – कभी हाथों पर बिठा चक्कर दिलाये और फिर कभी छत तक उछाल दे।

मीश्का सहन करता रहा, सहता रहा और फिर दादा की तरह उसने भौंहें सिकोड़ीं और शरीर को अकड़ा लिया। उसने बाप की मूंछें पकड़ लीं।

"छोड़ दो मुझे, बापू!"

"नहीं छोड़ने का!"

"छोड़ दो! मैं बड़ा हो गया हूं और तुम मुझे बिल्कुल छोटे बच्चे की तरह उछाल रहे हो!.."

बाप ने बेटे को घुटनों पर बिठा लिया और मुस्कराते हुए पूछा:

"कितने साल का हो गया है रे पिस्तौल तू?"

"आठवां चल रहा है," सिकोड़ी हुई आंखों से देखते हुए मीश्का ने अनिच्छा से कहा।

"याद है न बेटे कि दो साल पहले जब मैं आया था तो कैसे

मैंने तुझे जहाज़ बना-बनाकर दिये थे? कैसे हमने तालाब में वे जहाज़ चलाये थे?"

"याद है!.." मीश्का ने झट से जवाब दिया और कुछ झिझकते हुए अपनी दोनों बांहें बाप के गले में डाल दीं।

बस फिर क्या था खूब रंग जमा। बाप ने मीश्का को कंधे पर बिठाया, पैरों से पकड़ा और कमरे में दे चक्कर पर चक्कर। कभी वह दुलकी चले तो कभी घोड़े की तरह हिनहिनाये। मीश्का तो खुशी के मारे हांफने लगा। मां उसकी आस्तीन खींचने और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर कहने लगी:

"अरे जा, बाहर जाकर खेल!.. अरे सुनता नहीं दुष्ट, कह रही हूं कि बाहर जाकर खेल!" फिर उसने बाप से कहा, "छोड़ दो अब इसे फ़ोमा अकीमिच! छोड़ भी दो!.. यह तो तुम्हें, मेरे प्रिय को, आंख भरकर देखने भी नहीं देगा। दो बरस से आंखें तरस गयी हैं तुम्हें देखने को, और तुम हो कि इसी में उलझे हुए हो!"

बाप ने मीश्का को नीचे उतार दिया और कहा:

"जा भाग, जाकर अपने दोस्तों से खेल-कूद। जब लौटेगा तो तुझे मिठाई खिलाऊंगा।"

मीश्का ने दरवाज़ा खोला और बाहर! पहले तो यह ख्याल आया कि ड्योढ़ी में खड़ा रहकर कान लगाये और सुने कि कमरे में क्या बातचीत होती है। मगर तभी याद आया कि बाप के घर लौटने की खबर तो किसी भी बच्चे को मालूम नहीं। ऐसी खबर न बतायी जाये भला? और बस वह नज़र आया अहाते में, और फिर घर के बगीचे में लगे आलुओं के पौधों को फांदता हुआ तालाब पर जा पहुंचा।

तालाब के ठहरे हुए और बदबूदार पानी में मीश्का ने ग़ोते पर ग़ोते लगाये। फिर वह रेत पर लोटा-पोटा और उसने आख़िरी बार ग़ोता लगाया। फिर वह एक टांग पर कूदा और उसने पाजामा ऊपर खींचा। वह घर जाने को बिल्कुल तैयार ही था कि पादरी का बेटा वीत्का उसके पास आ पहुंचा।

"मीश्का, थोड़ी देर और रुक जा! आ, हम साथ-साथ ग़ोते लगायें और फिर हमारे घर चलकर खेलेंगे। माता जी तुझे हमारे घर आने से नहीं रोकतीं।"

मीश्का ने खिसक रहे पाजामे को बायें हाथ से खींचा, कंधे पर की पट्टी ठीक की और कहा:

"मैं तेरे साथ खेलना नहीं चाहता। तेरे कान सड़े रहते हैं!.."

वीत्का ने बदले की भावना से आंख सिकोड़ी और अपने हड़ीले कंधे से खींचकर क़मीज़ उतारते हुए कहा:

"यह तो कनपेड़ा है। पर तू किस मुंह से बात करता है, रे गंवार, तेरी मां ने तो तुझे बाड़ तले जना था!"

"तू देखने गया था न?"

"सुना है मैंने तो। हमारी बावर्चिन ने बताया था मेरी माता जी को।"

मीश्का ने पांव से मिट्टी कुरेदी और वीत्का को सिर से पांव तक देखा।

"बकवास करती है तेरी माता जी! मेरे बापू तो लड़ाई लड़कर आये हैं और तेरा बाप हरामखोर है, बैठा-बैठा पराया माल हड़पता रहता है!"

"हरामी!" पादरी के बेटे ने रुआंसा होकर कहा।

मीश्का ने जैसे ही पानी से घिसा हुआ एक पत्थर उठाया कि पादरी का बेटा अपने आंसुओं को रोकता हुआ मधुरता से मुस्कराया:

"लड़ नहीं मुझसे मीश्का, बुरा मत मान! अगर तू चाहे तो मैं तुझे अपना चाकू दे सकता हूं। अच्छे लोहे का बना हुआ है!"

मीश्का की तो ख़ुशी से बांछें खिल गयीं। उसने पत्थर एक तरफ़ को फेंक दिया। मगर तभी उसे अपने बाप के घर लौटने की बात याद आयी। उसने गर्व से कहा:

"मेरे बापू तेरे चाकू से भी बढ़िया चाकू लाये हैं मेरे लिये, लड़ाई के मोर्चे से!"

"झू-ऊ-ठ बोलता है!" विश्वास न करते हुए वीत्का ने "झू" को लंबा खींचकर कहा।

"तू ख़ुद है झूठा!.. जब कह रहा हूं कि लाये हैं तो इसका मतलब है कि लाये हैं! सचमुच की बन्दूक़ भी लाये हैं..."

"अरे वाह, तब तो तेरे बड़े ठाठ हैं!" वीत्का ने उसकी खिल्ली उड़ायी।

"उनके पास तो एक टोपी भी है जिस पर फ़ीते टंके हुए हैं और सुनहरे अक्षर लिखे हैं, ठीक वैसे ही, जैसे तेरी किताबों में हैं!"

वीत्का देर तक सोचता रहा कि क्या कहे कि मीश्का दंग रह जाये। उसने माथे पर बल डाले और अपना पेट खुजाया। आख़िर बात सूझी।

"मेरे पिता जी तो बस जल्दी ही बड़े पादरी बननेवाले हैं और तेरा बाप – वह तो था चरवाहा, ढोर चराता था। अब बोल?.."

मीश्का तंग आ गया था। वह मुड़ा और बगीचे की तरफ़ चल दिया। पादरी के बेटे ने उसे पुकारा:

"मीश्का, रे मीश्का! सुन तुझे एक बात बताऊं!"

"बता।"

"यहां आ, मेरे पास!"

मीश्का उसके पास गया और आशंका से उसे देखने लगा:

"हां, तो बता!"

पादरी का बेटा अपनी पतली और टेढ़ी-मेढ़ी टांगों से रेत पर नाचा, मुस्कराया और मीश्का को चिढ़ाने की नीयत से ऊंचे स्वर में कह उठा:

"तेरा बाप कम्युनिस्ट है! जैसे ही तू मरेगा और तेरी आत्मा उड़कर आसमान में पहुंचेगी तो भगवान कहेगा – 'चूंकि तेरा बाप कम्युनिस्ट था, इसलिये तेरी जगह जहन्नुम में है!' वहां शैतान तुझे पकड़कर कड़ाही में भूनना शुरू कर देंगे!"

"और तू यह समझता है कि शैतान तुझे छोड़ देंगे?"

"मेरे पिता तो पादरी हैं!.. तू बिल्कुल बुद्धू है, अनपढ़ गंवार है! कुछ भी तो नहीं समझता..."

मीश्का को डर ने आ दबोचा। वह मुड़ा और चुपचाप घर की ओर दौड़ चला।

अहाते की बाड़ के करीब पहुंचकर वह रुक गया। वहां से उसने चीखकर पादरी के बेटे को आवाज़ दी और घूंसा दिखाते हुए कहा:

"अभी जाकर पूछता हूं दादा से। अगर झूठ निकला तो बस फिर कभी हमारे अहाते के पास से मत गुज़रना!"

मीश्का बाड़ लांघकर अहाते में पहुंचा, घर की तरफ़ लपका। उसकी आंखों के सामने घूम रही थी कड़ाही और कड़ाही में भूना जा रहा था वह ख़ुद मीश्का... वह गर्म-गर्म कड़ाही में बैठा है और चारों ओर मलाई उभड़-उभड़ भाप छोड़ रही है। डर के मारे उसके

रोंगटे खड़े हो गये। जल्दी से जाना चाहिये दादा के पास, पूछना तो चाहिये।

फाटक में तो जैसे जान-बूझकर सूअर फंसा हुआ था। उसकी गर्दन एक तरफ़ थी और बाक़ी हिस्सा था दूसरी तरफ़। वह खुरों को ज़मीन पर टेके था, दुम हिलाता हुआ बुरी तरह चिल्ला रहा था। मीश्का ने चाहा कि सूअर को मुसीबत से बचाये। उसने फाटक खोलना चाहा, मगर सूअर बहुत ज़ोर से खरखराने लगा। वह सूअर की पीठ पर चढ़ बैठा। सूअर ने अपना पूरा ज़ोर लगाया, फाटक टूटकर अलग जा गिरा। सूअर वहां से भागा, अहाता लांघता हुआ खलिहान की ओर बढ़ चला। मीश्का ने उसके पेट में एड़ियां मारनी शुरू कीं। सूअर उड़ चला, मीश्का के बाल हवा में लहराने लगे। मीश्का खलिहान के पास पहुंचकर सूअर की पीठ से कूदकर नीचे उतरा। उसने देखा कि दादा ड्योढ़ी की देहरी पर खड़े हैं और उंगली से इशारा करके उसे बुला रहे हैं।

"इधर आना ज़रा मेरे पास, मेरे बेटे!"

मीश्का समझ न पाया कि दादा उसे क्यों बुला रहे हैं। मगर तभी उसे नरक की कड़ाही की याद आ गयी। वह तेज़ी से भागा दादा की तरफ़।

"दादा, प्यारे दादा, क्या आसमान पर शैतान होते हैं?"

"ठहर, अभी चखाता हूं तुझे शैतान का मज़ा! अरे ओ पाजी, तू सूअर पर क्यों चढ़ा फिर रहा था?"

दादा ने मीश्का के बाल पकड़ लिये और आवाज़ देकर घर के अन्दर से मां को बुलाया:

"ज़रा बाहर आकर अपने लाड़ले को तो देखो!"

मां हड़बड़ायी हुई आयी।

"क्यों डांट-डपट रहे हो?"

"क्यों डांट-डपट रहा हूं? यह हज़रत अहाते में सूअर की सवारी कर रहे थे, धूल फांकते फिर रहे थे!..."

"अरे हाय! तू गाभिन सूअर पर चढ़ा फिर रहा था?" मां तो चीख उठी।

मीश्का अपनी सफ़ाई देने को मुंह भी न खोल पाया कि दादा ने कमर से पेटी खोल ली। बायें हाथ से वे कमरबन्द थामे रहे कि कहीं

पाजामा न फिसल जाये और दायें हाथ से उन्होंने मीश्का का सिर अपने घुटनों में दबाया और लगे मरम्मत करने। पिटाई करते जाते थे और साथ ही डांटते जाते थे:

"ख़बरदार जो अब फिर कभी सूअर की सवारी की... ख़बरदार!.."

मीश्का का मन हुआ कि ज़ोर से चीखे, मगर दादा ने डांटा:

"कुत्ते के पिल्ले, सोने नहीं देगा अपने बापू को? वह थका-हारा आया है सफ़र से। ज़रा आंख लगी है और अब तू गला फाड़ेगा?"

मजबूर होकर चुप रह जाना पड़ा। मीश्का ने दादा को लात मारने की कोशिश की, मगर यह कोशिश भी कारगर न हुई। मां ने दादा से मीश्का का पिंड छुड़ाया और मकान के अन्दर धकेल दिया।

"बैठ यहां, तेरी मां को शैतान ले जायें! ऐसी चमड़ी उधेड़ूंगा तेरी कि दादा की मार भूल जायेगा!"

दादा रसोईघर में तख़्ते पर बैठे थे। वे रह-रहकर मीश्का की पीठ को देख रहे थे।

मीश्का दादा की ओर घूमा, मुट्ठी से मलकर उसने आख़िरी आंसू पोंछा और दरवाज़े के साथ पीठ सटाकर कहा:

"अच्छा दादा... तुम भी याद रखना!"

"अरे पाजी, तू क्या अपने दादा को डराना-धमकाना चाहता है?"

मीश्का ने देखा कि दादा फिर से पेटी खोलने लगे हैं। उसने भी होशियारी से थोड़ा-सा दरवाज़ा खोल लिया।

"हां, तो तू मुझे डराने-धमकाने चला है?" दादा ने फिर से पूछा।

मीश्का झटपट दरवाज़े के पीछे ग़ायब हो गया। वह दरवाज़े की दरार के साथ आंख लगाकर दादा की हर गतिविधि को ध्यान से देखने लगा। फिर बोल उठा:

"कुछ दिन और ठहर जाओ, कुछ दिन और, दादा जी!.. फिर तुम्हारे दांत गिर जायेंगे। तब मैं तुम्हें कौर चबा-चबाकर नहीं दूंगा!.. तब तुम मुझसे कहना भी नहीं!"

दादा बाहर आये। देखा कि बगीचे में सन के झबरीले पौधों के बीच से मीश्का का सिर और नीला पाजामा झलक दिखा रहा है।

दादा देर तक उसे बैसाखी दिखा दिखाकर धमकाते और दाढ़ी में अपनी मुस्कान छिपाते रहे।

* * *

बाप के लिये मीश्का – मीन्का था। मां उसे बुलाती थी – मीन्युश्का। दादा को जब प्यार आता तो वह उनकी नज़र में शरारती लड़का होता। बाक़ी समय जब दादा की मुरझायी-सी सफ़ेद भौंहें आंखों पर लटकी-सी रहतीं तो वे उसे पुकारते और कहते, "अरे ओ मिखाईल फ़ोमीच, इधर आ, ज़रा तेरे कान गर्म कर दूं!"

बाक़ी लोग, जैसे कि इधर-उधर की बातें उड़ानेवाली पड़ोसिनें, छोकरे और गली-मोहल्लेवाले उसे मीश्का या "हरामी" कहकर बुलाते।

मां कुंवारी ही थी कि मीश्का ने जन्म लिया था। महीने भर बाद बेशक फ़ोमा चरवाहे से उसकी शादी हो गयी थी। उसी का यह बच्चा था। मगर बदनामी भरा यह "हरामी" शब्द सदा के लिये मीश्का के नाम के साथ जुड़कर रह गया था।

मीश्का सीख-सलाई-सा था। वसन्त के दिनों में मीश्का के बाल खिलते हुए सूरजमुखी के फूल की पंखुड़ियों की तरह पीले पड़ जाते। जून महीने का सूरज उन्हें झुलसाकर उलझे-झबरीले बना देता। मीश्का के गाल चिड़िया के अंडों जैसे लगते, जहां-तहां बुन्दकियां पड़ी हुईं। रही नाक तो वह तेज धूप और तालाब में बार-बार गोते लगाने से छिली रहती और उसकी चमड़ी फटी रहती। इस धनुषाकार टांगोंवाले मीश्का की सिर्फ़ आंखें ही सुन्दर थीं। तंग पपोटों में से उसकी नीली और शरारती आंखें यों चमकतीं जैसे नदी में बर्फ़ के वे टुकड़े, जो अभी पिघले न हों।

बाप को मीश्का की दो चीज़ें पसन्द थीं – एक तो उसकी सुन्दर आंखें और दूसरे उसका घड़ी भर को भी टिककर न बैठना। फ़ौज से वह उसके लिये दो उपहार लाया था – एक तो बिस्कुट जो काफ़ी समय तक रखा रहने के कारण सूखकर पत्थर हो गया था और दूसरा, थोड़े-से घिसे हुए ऊंचे बूटों का जोड़ा। बूट तो मां ने तौलिये में लपेटकर सन्दूक़ में रख दिये और बिस्कुट को मीश्का ने देहली पर रखकर हथौड़े से तोड़ा और उसका आखिरी कण तक हड़प गया।

दूसरे दिन जैसे ही सूरज निकला कि मीश्का भी उठ बैठा। उसने लोहे के पतीले में से चुल्लू भर गर्म पानी लिया और पिछले दिन का मैल मैले-कुचैले गालों पर फैला डाला। मुंह सुखाने के लिये वह बाहर दौड़ गया।

मां गाय की सेवा में जुटी हुई थी, दादा पुश्ते पर बैठे थे। मीश्का पर नज़र पड़ते ही उसे आवाज़ दी:

"अरे शरारती, जा भागकर खत्ती में जा। वहां मुर्ग़ी कुड़कुड़ायी है, अंडा दिया होगा।"

मीश्का दादा का हुक्म बजाने को सदा तैयार रहता था – हाथों-पैरों के बल आन की आन में जा पहुंचा खत्ती में। इधर से गया, उधर से रेंगा और यह जा और वह जा! भाग लिया तालाब की ओर! भागता था और देखता जाता था कि कहीं दादा तो नहीं देख रहे हैं? बाड़ तक पहुंचते बिच्छू बूटी ने काट लिया, टांगें जैसे जल ही तो गयीं। दादा बैठे रहे राह देखते हुए, खीझते हुए। जब सब्र का प्याला छलक गया तो खुद घुसे खत्ती में। जगह-जगह मुर्गियों की बीट चिपक गयी। भीतर घुप अन्धेरा था। बड़े मियां टटोलते हुए जो आगे बढ़े तो शहतीरों से ज़ोर से सिर टकराया। आखिर रेंगकर दूसरी ओर के सिरे पर जा पहुंचे।

"अरे ओ उल्लू रे, मीश्का, क्या कहूं तुझे!.. ढूंढ़ रहा है, ढूंढ़ रहा है और कुछ पल्ले नहीं पड़ेगा तेरे!.. अरे मूर्ख, मुर्ग़ी क्या वहां जाकर अंडा देगी? यहीं पत्थर के नीचे होगा अंडा। तू कहां रेंगता फिर रहा है शरारती?"

दादा कहते गये, मगर जवाब में छायी रही खामोशी। उन्होंने अपने कपड़ों से बीट झाड़ी और खत्ती से निकल आये। आंखें सिकोड़कर देर तक तालाब की ओर देखते रहे। आखिर मीश्का को देख लिया और हताश होकर हाथ झटक दिया।

बालकों ने तालाब के निकट मीश्का को घेर लिया और लगे पूछने:

"तेरा बाप लड़ाई पर गया था?"

"गया था।"

"क्या करता रहा वह वहां?"

"करता क्या रहा, लड़ता रहा!"

"तू बकता है! वह वहां जूएं मारता और रसोईघर में हड्डियां चूसता रहा!.."

बालकों ने ज़ोर का ठहाका लगाया, मीश्का को उंगलियों से कोंचने और उसके गिर्द उछलने-कूदने लगे। खीझ और अपमान से मीश्का की आंखों में आंसू आ गये। तिस पर पादरी के बेटे वीत्का ने एक और तीर छोड़ा:

"तेरा बाप कम्युनिस्ट है न?" उसने पूछा।

"मालूम नहीं..."

"मैं- जानता हूं कि वह कम्युनिस्ट है। मेरे पिता जी आज सुबह कह रहे थे कि तेरे बाप ने शैतान के हाथ अपनी आत्मा बेच दी है। उन्होंने यह भी कहा था कि सभी कम्युनिस्टों को शीघ्र ही फांसी दी जायेगी!"

बालक चुप हो गये, मीश्का का दिल बैठ गया। मेरे बापू को फांसी दी जायेगी—पर किस लिये? उसने ज़ोर से दांत पीसे और कहा:

"मेरे बापू के पास बहुत बड़ी बन्दूक़ है, सभी बुर्जुओं को उड़ा देगा!"

वीत्का एक पैर आगे की तरफ़ बढ़ाकर बड़ी शान से बोला:

"कुछ नहीं बनेगा उसके किये-धरे! मेरे पिता जी उसे आशीष ही नहीं देंगे। बिना आशीष के वह कुछ नहीं कर पायेगा!.."

दूकानदार के बेटे प्रोश्का ने नथुने फुलाकर मीश्का की छाती में मुक्का मारा और चीखकर कहा:

"तू अपने बाप की शान में मत रहना! जब क्रान्ति हुई थी तो वह मेरे बाप का माल उठा ले गया था। मेरे पिता ने कहा था—'सरकार लौट आयेगी तो मैं चरवाहे फ़ोमा को ही सबसे पहले खत्म करूंगा!'"

प्रोश्का की बहन नताशा ने पैर पटककर कहा:

"करो इसकी मरम्मत, देख क्या रहे हो?"

"मारो इस कम्युनिस्ट के बेटे को!"

"हरामी!"

"प्रोश्का, दिखाओ इसे तारे!"

प्रोश्का ने कमची घुमायी और कसकर मीश्का के कंधे पर रसीद

की। पादरी के बेटे वीत्का ने लंगड़ी मारी और मीश्का रेत पर चारों खाने चित हो गया।

बालक खूब ज़ोर से चिल्लाये और मीश्का पर टूट पड़े। नताशा अपनी बारीक आवाज़ में शोर मचाती हुई झपटी और मीश्का की गर्दन नोचने लगी। किसी ने कसकर मीश्का के पेट में लात जमायी।

मीश्का ने ज़ोर लगाकर प्रोश्का को अपने ऊपर से धकेला, उछलकर खड़ा हुआ और शिकारी कुत्तों से बचकर भागते हुए खरगोश की तरह घर की तरफ़ झपटा। उसके पीछे सीटियां बजती रहीं, उस पर पत्थर फेंका गया। मगर उसका पीछा किसी ने नहीं किया।

मीश्का ने पटुए के हरे भरे कुंज में पहुंचकर ही दम लिया। पटुए के पौधे उसके सिर से ऊंचे थे। वह सीली और सोंधी ज़मीन पर बैठ गया और नोची-खसोटी हुई गर्दन से खून साफ़ करते हुए रो पड़ा। ऊपर, पत्तियों के बीच से धूप छन रही थी, वह मीश्का की आंखों में झांकने के लिये बेचैन थी। धूप ने उसके गालों से आंसू सोख लिये और उसके उठे हुए लाल बालों को मां की तरह प्यार से चूमती रही।

मीश्का देर तक इसी तरह वहां बैठा रहा। जब आंखें सूख गयीं तो वहां से उठा और चुपचाप आंगन में पहुंचा।

पिता छानी में बैठा हुआ छकड़े के पहिये को तेल लगा रहा था। उसकी टोपी खिसककर गुद्दी पर पहुंच गयी थी, फ़ीते लटक रहे थे और वह सफ़ेद धारियोंवाली नीली क़मीज़ पहने था। मीश्का नज़र बचाकर पिता के पास पहुंचा और छकड़े के क़रीब आकर खड़ा हो गया। देर तक वह चुप्पी साधे रहा। फिर उसने हिम्मत करके बाप का हाथ छुआ और फुसफुसाते हुए पूछा:

"बापू, तुम लड़ाई पर गये थे तो वहां क्या करते रहे?"

अपनी लाल मूंछों के बीच मुस्कराते हुए पिता ने जवाब दिया:

"लड़ाई लड़ता रहा बेटे!"

"मगर लड़के... लड़के कहते हैं कि तुम वहां सिर्फ़ जूएं मारते रहे!.."

आंसुओं से मीश्का का गला रुंध गया। बाप हंस दिया और उसने मीश्का को हाथों पर उठा लिया।

"मेरे बेटे, वे बकते हैं! मैं तो जहाज पर था। उस बड़े जहाज पर जो समुद्र में चलता है। मैं उसी में था और फिर लड़ने गया।"

"किससे तुमने लड़ाई लड़ी?"

"धन-दौलतवालों से, मेरे लाल! तू अभी बहुत छोटा है! इसी-लिये मुझे लड़ना पड़ा तेरे बजाय। इसके बारे में तो गाना भी गाया जाता है।

बाप मुस्कराया, मीश्का की ओर देखते हुए पैरों से ताल देकर गाने लगा:

अरे मिखाईल, मेरे बेटे,
मत जा रे तू लाम पर
मेरी सांस अभी बाक़ी है
जीवन की मैं सभी बहारें देख चुका हूं,
तू तो खिलता फूल अभी है
अभी तुझे शादी करनी है
मेरे लाल, मेरे लाल...

बालकों की हरकत से मीश्का को जो दुख हुआ था, अब वह उसे भूल गया। अब उसे इस बात पर हंसी आ गयी कि बाप की मूंछें उसके होंठों पर मूंज के उन रेशों की भांति अकड़ी हुई थीं जिनसे मां झाड़ू बनाती है। मूंछों के नीचे जब होंठ हिलते-डुलते थे तो देखने से हंसी आती थी और जब मुंह खुलता था तो अन्दर एक गोल और काला-सा छेद नज़र आता था।

"तू इस वक़्त मेरे काम में खलल मत डाल मीन्का," बाप ने कहा, "अभी मुझे छकड़े की मरम्मत कर लेने दे और रात को सोते वक़्त मैं तुझे लड़ाई की सभी बातें सुनाऊंगा।"

* * *

दिन लम्बा होता चला गया, स्तेपी के सुनसान लम्बे रास्ते की तरह। सूरज ने अपना किरणजाल समेटा और घोड़ों का झुण्ड गांव से गुज़र गया। धूल बैठ गयी और संवलाये हुए आकाश से पहले सितारे ने लजाते हुए धरती की ओर देखा।

मीश्का के मन को चैन नहीं था, और मां जैसे कि जान-बूझकर देर करती जा रही थी। वह देर तक दूध दुहती रही, देर तक उसे छानती रही, फिर तहखाने में गयी तो वहीं घण्टा भर गुम रही।

मीश्का को क़रार नहीं था, वह मां के इर्द-गिर्द चक्कर काटता फिर रहा था।

"जल्द ही खाना दोगी न मां?"

"जरा सब्र कर रे! मिल जायेगा खाना, मरा क्यों जा रहा है!"

मगर मीश्का उसके पीछे-पीछे लगा रहा। मां तहखाने में जाये तो वह भी उसके पीछे, मां रसोईघर जाये तो वह भी वहां हाज़िर। जोंक की तरह चिपक गया मां का दामन पकड़े।

"मां... मां... ज़रा जल्दी से खाना दे दो!"

"अरे कह तो दिया! पेट में आग लगी है तो जा, जाकर रोटी का टुकड़ा लेकर खा ले!"

मगर मीश्का सुनी-अनसुनी करता रहा। मां ने गुद्दी पर एक चपत जमा दिया, मगर इससे भी कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा।

मीश्का ने रात का खाना हड़बड़ी में जैसे-तैसे गले के नीचे उतारा और फटाफट जा पहुंचा सोने के कमरे में। पाजामा उतारकर उसने सन्दूक़ के पीछे काफ़ी दूर फेंक दिया और बिस्तर में मां की रज़ाई के नीचे जा दुबका। रज़ाई रंगबिरंग कपड़ों के टुकड़ों को जोड़कर बनायी गयी थी। बिस्तर में जा लेटा और मन में इस बात की बेचैनी बनी हुई थी कि कब बाप आये और लड़ाई का हाल सुनाये।

दादा देव-मूर्तियों के सामने घुटने टेके हुए प्रार्थना कर रहे थे। मीश्का ने सिर ऊंचा किया। देखा कि दादा बड़ी कठिनाई से और बायें हाथ की उंगलियों से सहारा लेकर झुके और इतना झुके कि उनका सिर फ़र्श से जा टकराया। मीश्का ने दीवार पर कुहनी मारी – ठक!..

दादा फिर फुसफुसाते हुए प्रार्थना करते और फ़र्श पर माथा टेकते रहे। मीश्का भी दीवार को ठकठकाता रहा। दादा खीझ उठे, मीश्का की तरफ़ मुड़े और डांटते हुए बोले:

"ठहर शैतान, अभी बताता हूं तुझे! क्षमा करना मुझे भगवान! नहीं मानता तो अभी तेरी मरम्मत करता हूं!"

पिटाई शुरू होनेवाली ही थी कि पिता ने भीतर क़दम रखा।

"तू मां के बिस्तर में क्यों जा घुसा रे, मीन्का?" बाप ने पूछा।

"मैं मां के साथ ही तो सोता हूं।"

बाप बिस्तर पर बैठ गया और चुपचाप मूंछों को बल देने लगा। कुछ देर बाद उसने कहा:

"मगर मैंने तो दादा के साथ तेरा बिस्तर लगाया है..."

"मैं दादा के साथ नहीं सोऊंगा!"

"मगर क्यों?"

"उनकी मूंछों से तम्बाकू की बू आती है!"

बाप ने फिर मूंछें मरोड़ी और गहरी सांस ली:

"नहीं बेटे, तू दादा के साथ ही जाकर सो जा..."

मीश्का ने रज़ाई से सिर ढंक लिया और चोरी-चोरी एक आंख से देखते हुए शिकायत के लहजे में कहा:

"कल भी तुम मेरी जगह सोये रहे और आज फिर वही चाहते हो... आज तुम सो जाओ दादा के साथ!"

मीश्का बिस्तर पर उठकर बैठ गया, बाप का सिर हाथों में ले लिया और धीरे से बोला:

"तुम ही सो जाओ दादा के साथ! मां तो वैसे भी तुम्हारे साथ नहीं सोयेगी। तुम्हारे मुंह से भी तम्बाकू की तेज़ बू आती है!"

"अच्छा, मैं ही सो जाऊंगा दादा के साथ, मगर फिर लड़ाई का क़िस्सा नहीं सुनाऊंगा।"

बाप उठा और रसोईघर की तरफ़ चल दिया।

"बापू!"

"क्या है?"

"अच्छा तो यहीं सो जाओ..." मीश्का ने गहरी सांस लेकर कहा और उठकर बैठ गया, "मगर लड़ाई के बारे में तो सुनाओगे ना?"

"हां, सुनाऊंगा।"

दादा दीवार की ओर लेट गये और मीश्का को उन्होंने दूसरी ओर लिटा दिया। कुछ देर बाद बाप आया। उसने बिस्तर के करीब एक बेंच खींच ली और काग़ज़ में मोटा तम्बाकू लपेटकर कश लगाने लगा।

"हां तो हुआ यह... तुझे याद होगा कि हमारे खलिहान के पीछे कभी दूकानदार का एक खेत था?"

मीश्का को याद हो आया कि कैसे वह कभी सोंधे और ऊंचे-ऊंचे गेहूं के खेत में भागा-फिरा करता था। पत्थर की मुंडेर फांदकर वह इस खेत में जा पहुंचता था। गेहूं के पौधे उसके सिर से ऊंचे-ऊंचे होते थे और भरी हुई बालें मुंह पर गुदगुदी किया करती थीं। खेत से धूल-

मिट्टी और स्तेपी की हवा की गन्ध भी आया करती थी। मां उसे पुकार-पुकारकर कहा करती थी:

"मीन्युश्का, खेत में बहुत दूर मत जाना, तू रास्ता भूल जायेगा!..."

बाप घड़ी भर को चुप हो गया और फिर मीश्का का सिर सहलाते हुए बोला:

"याद है तुझे कि तू मेरे साथ रेत के टीले तक गया था? वहां हमारा खेत था..."

मीश्का को फिर याद आया: रेत के टीले के पीछे, रास्ते के साथ-साथ, खेत की एक टेढ़ी और पतली-सी पट्टी थी तो सही। मीश्का अपने बाप के साथ वहां गया था और खेत को पशुओं के खुरों से रौंदा हुआ पाया था। भूमि पर जहां-तहां गेहूं की बालों की गन्दी-मन्दी ढेरियां लगी हुई थीं। सिर्फ़ डंठल हवा में झूल रहे थे। मीश्का को इस बात का भी स्मरण हो आया कि उसके हट्टे-कट्टे और लम्बे-तड़ंगे बापू का चेहरा बहुत भयानक रूप से विकृत हो उठा था और धूल-मिट्टी से लथपथ उसके गालों पर रुक-रुककर आंसू की बूंदें टपकने लगी थीं। बाप को रोता देखकर मीश्का भी रो दिया था।...

लौटते हुए बाप ने खेत के रखवाले से पूछा था:

"फ़ेदोत, जानते हो कि मेरे खेत का किसने ऐसा बुरा हाल किया है?"

फ़ेदोत ने ज़ोर से थूककर जवाब दिया था:

"दूकानदार मंडी की ओर अपने ढोर-डंगर लिये जा रहा था। जान-बूझकर उसने उन्हें तुम्हारे खेत में छोड़ दिया था..."

...बाप ने बेंच और नज़दीक खींची और कहा:

"दूकानदार और बाक़ी अमीर लोगों ने सारी ज़मीन हथिया रखी थी, ग़रीबों के पास बोने के लिये ज़मीन ही नहीं थी। हमारे गांव में ही नहीं, सभी जगह यही हाल था। बुरी तरह से नाक में दम कर रखा था तब उन्होंने हमारा... जीना दूभर था... मैंने सोचा ज़मीन नहीं है, न सही, दूसरों के ढोर चराया करूंगा। कुछ अर्से बाद मुझे सेना में भर्ती कर लिया गया। सेना का भी यही हाल कि अफ़सर लोग ज़रा ज़रा-सी बात पर कसकर तमाचा लगाते... फिर बोल्शेविक सामने आ गये। इनमें जो सबसे बड़ा था, उसे लेनिन कहते थे। वह वैसे तो

बड़ा सीधा-सादा आदमी था, मगर दिमाग़ बहुत बढ़िया पाया था उसने। ज़रूर हम देहातियों की नस्ल का ही होगा। बोल्शेविकों ने हमें ऐसी बातें बतायीं कि हम तो दंग रह गये। कहा उन्होंने, 'अरे देहातियो, किसानो-मज़दूरो, मुंह बाये क्या देख रहे हो? उठो मिलकर, सफ़ाया कर दो इन श्रीमानों का, इन अफ़सरों का! सब कुछ तुम्हारा ही है!'

"उनके इन शब्दों ने हमें चक्कर में डाल दिया। सोचा-विचारा तो महसूस हुआ कि ठीक ही कहते हैं। तो हम लोगों ने श्रीमानों से ज़मीन-जायदाद छीन ली। मगर इन लोगों ने बुरा वक़्त भला कब देखा था, टूट पड़े हम पर, हम किसानों और मज़दूरों पर, और बस लड़ाई शुरू हो गयी... समझे बेटे?

"हां, और बोल्शेविकों में सबसे बड़े यानी लेनिन ने जनता को उठाकर खड़ा कर दिया। ठीक वैसे ही जैसे कि हल का फाल मिट्टी को उठाता चला जाता है। उन्होंने फ़ौजियों और मज़दूरों को एकजुट किया और अमीर लोगों की धज्जियां उड़ाने लगा। धज्जियां उड़ा दीं उनकी! फ़ौजी और मज़दूर लाल गार्ड कहलाने लगे। मैं भी उन्हीं में था। एक बड़े-से घर में रहते थे हम – स्मोल्नी नाम था उसका। दालान उसका – यह लम्बा सारा था और कमरे इतने थे कि आदमी रास्ता भूल जाये।

"एक बार क्या हुआ कि रात का वक़्त था, मैं दरवाज़े पर पहरा दे रहा था। बाहर बड़ी ठंड थी और मैं सिर्फ़ एक फ़ौजी कोट पहने था। हवा तन को काट रही थी... तभी इस घर से दो आदमी बाहर निकले और आगे बढ़े तो मैंने देखा कि उनमें से एक लेनिन हैं। वह मेरे पास आये और प्यार से बोले:

"'साथी, सर्दी तो नहीं लग रही?'

"और मैंने जवाब दिया, 'नहीं, साथी लेनिन! ठंड ही क्या, कोई दुश्मन भी नहीं डरा सकता हमें! हमने शासन की बागडोर इसलिये तो अपने हाथों में नहीं ली है कि फिर से उसे बुर्जुओं के हवाले कर दें!'

"लेनिन मुस्करा दिये और उन्होंने ज़ोर से मुझसे हाथ मिलाया। फिर वह धीरे-धीरे आगे बढ़े और फाटक की ओर चले गये।"

बाप ने जेब से तम्बाकू निकाला, काग़ज़ में लपेटा और सिगरेट

बनाकर दियासलायी जलायी। उस रोशनी में मीश्का ने बाप की लाल और अकड़ी हुई मूंछों में चमकती हुई आंसू की बूंद देखी, ओस की उस बूंद जैसी जो सुबह के वक़्त बिच्छूबूटी की पत्ती के सिरे पर अटकी रह जाती है।

"हां तो ऐसे थे लेनिन! सभी की चिन्ता करते थे। एक-एक फ़ौजी रहता था उनके दिल में... उस दिन के बाद मैंने अक्सर उन्हें देखा। मेरे नज़दीक से गुज़रते, दूर से ही मुस्कराते और पूछते:

"'तो बुर्जुआ मिटा तो नहीं डालेंगे हमें?'

"'इतना दम उनमें कहां, साथी लेनिन!' मैं उन्हें जवाब देता।

"सोलह आने सही निकली बेटे उनकी बात। ज़मीनें और कारखाने हमने अमीरों से, हमारा ख़ून पीनेवालों से छीन लिये और उनकी कमर तोड़ डाली!.. जब बड़ा हो जायेगा तो यह याद रखना कि तेरा बापू जहाज़ी था और चार बरस तक उसने कम्यून के लिये अपना ख़ून बहाया था। तेरे बड़े होने तक मैं इस दुनिया में नहीं रहूंगा, लेनिन भी नहीं होंगे, पर हमारा काम सदियों तक जियेगा!.. बड़ा होने पर तू भी अपने बापू की तरह ही सोवियत सत्ता के लिये लड़ेगा, न?"

"लड़ूंगा!" मीश्का चिल्ला उठा। वह उछलकर बिस्तर पर खड़ा हो गया। उसने बाप की गर्दन से लिपटना चाहा। वह भूल गया कि क़रीब ही दादा सोये पड़े हैं, उनके पेट में पांव लगा।

दादा चीख उठे। उन्होंने हाथ बढ़ाया कि मीश्का को बालों से पकड़ लें। मगर बाप ने जल्दी से मीश्का को हाथों पर उठा लिया और दूसरे कमरे में ले गये।

मीश्का बाप के हाथों पर ही सो गया। शुरू में तो वह देर तक अद्‌भुत व्यक्ति लेनिन, बोल्शेविकों, लड़ाई और जहाज़ों के बारे में सोचता रहा। नींद आते समय उसे दबी-दबी-सी आवाज़ें सुनायी देती रहीं, पसीने और घटिया तम्बाकू की गन्ध आती रही। बाद में पलकें भिंच गयीं मानो किसी ने हथेलियों से सहला-सहलाकर उन्हें बन्द कर दिया हो।

मीश्का को अभी अच्छी तरह से नींद भी न आयी थी कि उसने स्वप्न में एक शहर देखा। चौड़ी-चौड़ी सड़कें, राख में लोट-पोट होती हुई मुर्गियां। गांव में उनकी काफ़ी संख्या होती है, मगर नगर में तो कोई हिसाब ही नहीं। मकान बिल्कुल वैसे थे जैसे कि बाप ने

बताये थे। एक बड़ा-सा मकान, सरकंडों से ढका हुआ, उसकी चिमनी पर एक और मकान खड़ा हुआ, उसकी चिमनी पर तीसरा मकान रखा हुआ और सबसे ऊपरवाले मकान की चिमनी आकाश को छूती हुई।

मीश्का है कि चला जा रहा है इस शहर की सड़क पर। मुंह ऊपर को किये इधर-उधर देखता जा रहा ह। अचानक इतने में कहीं से एक लम्बा-तड़ंगा आदमी उसके सामने आकर खड़ा हो गया। वह लाल क़मीज़ पहने था।

"अरे मीश्का, क्यों तू सड़क पर बेमतलब मटरगश्ती करता फिर रहा है?" उसने बड़े प्यार से पूछा।

"दादा ने मुझे खेलने की छुट्टी दी है।"

"तू जानता है कि मैं कौन हूं?"

"नहीं, मैं नहीं जानता..."

"मैं – साथी लेनिन हूं!"

मीश्का को डर ने ऐसा दबोचा कि उसके घुटने जवाब दे गये। उसका मन हुआ कि सिर पर पैर रखकर भाग ले, मगर लाल क़मीज़-वाले व्यक्ति ने मीश्का की बांह पकड़ ली और कहा:

"रे मीश्का, शर्म तो तुझमें रत्ती भर नहीं है! तू खूब अच्छी तरह यह जानता है कि मैं ग़रीब लोगों के लिये लोहा ले रहा हूं। तू क्यों मेरी फ़ौज में शामिल नहीं हुआ?"

"दादा मुझे इसकी इजाज़त नहीं देते!" मीश्का ने अपनी सफ़ाई पेश की।

"खैर देख ले, जैसी तेरी मर्ज़ी," साथी लेनिन ने कहा, "मगर तेरे बिना मेरा काम सिरे चढ़ने का नहीं। तुझे मेरी फ़ौज में नाम लिखाना ही होगा!"

मीश्का ने लेनिन का हाथ पकड़ लिया और बहुत दृढ़तापूर्वक कहा:

"अच्छा तो यों ही सही। मैं दादा से पूछे बिना ही तुम्हारी फ़ौज में शामिल हो जाता हूं और ग़रीब लोगों के लिये लड़ूंगा। ऐसा करने के लिये अगर दादा मुझे डांटे-डपटेंगे तो उनसे तुम निपट लेना!"

"मैं ज़रूर तुम्हारी हिमायत करूंगा!" साथी लेनिन ने कहा और सड़क पर आगे बढ़ गया। मीश्का का तो खुशी के मारे यह हाल था कि सांस लेना मुश्किल! दिल बल्लियों उछल रहा था। उसका मन हो

रहा था कि चीखकर कुछ कहे, मगर ज़बान सूखकर रह गयी।...

मीश्का बिस्तर पर उछल पड़ा, दादा को लात लगी और मीश्का की आंख खुल गयी।

दादा नींद में बड़बड़ाये, होंठों से चप-चप की आवाज़ करने लगे। खिड़की से रोशनी झांकने लगी थी। तालाब के परे, हल्के पीले आकाश में रक्तवर्णी फेन से मिलते-जुलते बादल पूर्व की ओर से उमड़े चले आ रहे थे।

* * *

अब तो बाप हर शाम मीश्का को लड़ाई और लेनिन के क़िस्से सुनाने और यह बताने लगा कि वह किस-किस जगह लड़ने गया।

शनिवार का दिन था। शाम को कार्यकारिणी समिति का चौकीदार एक नाटे-से व्यक्ति को साथ लिये हुए आया। यह व्यक्ति फ़ौजी कोट पहने था और बग़ल में चमड़े का बैग दबाये था। चौकीदार ने दादा को आवाज़ दी और कहा:

"देखिये, मैं आपके घर पर सोवियत के एक कर्मचारी को लेकर आया हूं। वह नगर से आया है और रात को आप ही के यहां टिकेगा। दादा, रात की रोटी का प्रबन्ध कर दीजियेगा।"

"वह तो खैर सब हो जायेगा," दादा ने कहा, "मगर श्रीमान साथी, आप आर्डर तो लाये हैं न?"

दादा की योग्यता देखकर मीश्का तो दंग ही रह गया। वह मुंह में उंगली डालकर बहुत ध्यान से बातें सुनने लगा।

"आर्डर-वार्डर सब कुछ है!" चमड़े के बैगवाला व्यक्ति हंस दिया और अन्दर के कोठे की तरफ़ चल दिया।

दादा उस अजनबी के पीछे-पीछे हो लिये और मीश्का दादा के पीछे-पीछे।

"किस काम से आप हमारे गांव में आये हैं?" दादा ने रास्ते में पूछा।

"मैं यहां चुनाव कराने आया हूं। सोवियत के सदस्यों और अध्यक्ष का चुनाव होगा।"

कुछ ही देर बाद बाप भी खलिहान से आ गया। उसने अजनबी

से दुआ-सलाम की और मां से खाने का प्रबन्ध करने को कहा। खाने के बाद अजनबी और मीश्का का बाप बेंच पर साथ-साथ बैठ गये। अजनबी ने अपना चमड़े का बैग खोला, उसमें से काग़ज़ों का एक पुलिन्दा निकाला और बाप को दिखाने लगा। मीश्का के मन में बड़ी जिज्ञासा थी और वह इनके आस-पास घूम रहा था कि किसी तरह उन काग़ज़ों पर एक नज़र डाल ले। बाप ने एक काग़ज़ लिया और मीश्का को दिखाते हुए कहा :

"देख मीश्का, यह हैं लेनिन !"

मीश्का ने बाप के हाथ से तस्वीर झपट ली, उसी पर नज़र गड़ा दी और उसका मुंह आश्चर्य से खुल गया। यह लेनिन का एक छविचित्र था। क़द बहुत बड़ा नहीं, वह लाल क़मीज़ भी नहीं, कोट पहने थे। एक हाथ पतलून की जेब में था और दूसरा सामने की ओर उठा हुआ। मीश्का इस चित्र पर नज़र टिकाये था। एक ही नज़र में वह उसे ऊपर से नीचे तक देख गया। उसके स्मृतिपट पर हमेशा के लिये, अमिट रूप में लेनिन का एक-एक नक़्श अंकित होकर रह गया। कुछ-कुछ मुड़ी हुई भौंहें और आंखों और होंठों के कोनों में दुबकी हुई मुस्कान की स्मृति उसके मन में सदा के लिये जमकर रह गयी।

अजनबी ने मीश्का के हाथ से चित्र लिया, अपने बैग में रखकर ताला लगाया और सोने की तैयारी करने लगा। उसने कपड़े उतारे और फ़ौजी कोट ओढ़कर लेट गया। उसकी आंख लगने ही वाली थी कि दरवाज़ा चरचराया। उसने सिर ऊपर उठाया :

"कौन है ?"

फ़र्श पर किसी के नंगे पैरों की आहट हुई।

"कौन है ?" उसने दोबारा पूछा और बिस्तर के निकट बिल्कुल अप्रत्याशित ही मीश्का को खड़े पाया।

"क्या बात है, बेटे ?"

मीश्का घड़ी भर चुपचाप खड़ा रहा, फिर उसने साहस बटोरा और फुसफुसाकर कहा :

"चाचा, देखो बात यह है... तुम मुझे... मुझे लेनिन दे दो !..."

अजनबी चुप रहा, बिस्तर से आगे की ओर गर्दन बढ़ाकर उसने लड़के को ग़ौर से देखा।

मीश्का को डर ने आ दबाया – हो सकता है कि चाचा कंजूसी

कर जाये और चित्र न दे ! आवाज़ कांप न जाये इसका प्रयास करते और रुंधते हुए गले से उसने जल्दी-जल्दी फुसफुसाकर कहा :

"आप मुझे दे दें, बिल्कुल दे दें यह तस्वीर... मेरे पास टीन का अच्छा-सा डिब्बा है, मैं वह दे दूंगा आप को... और इसके अलावा पांसे भी दे दूंगा और..." मीश्का ने हाथ झटका और बुझे मन से आगे कहा, "वे जूते भी दे दूंगा जो बापू मेरे लिये लाये हैं !"

"मगर तू करेगा क्या लेनिन का ?" अजनबी ने मुस्कराते हुए पूछा।

"नहीं देने का !" मीश्का ने मन ही मन सोचा। उसने मुंह दूसरी तरफ़ फेर लिया ताकि आंसू नज़र न आयें और टूटती-सी आवाज़ में कहा :

"चाहिये, बस !"

अजनबी हंस दिया। उसने सिरहाने के नीचे से बैग निकाला और मीश्का को तस्वीर दे दी। मीश्का ने तस्वीर ली, उसे क़मीज़ के नीचे, दिल के बिल्कुल निकट, सीने पर ज़ोर से भींचा और कोठे से भागता हुआ बाहर आया। दादा की आंख खुल गयी और उन्होंने पूछा :

"अरे तू कहां टापता फिर रहा है आधी रात को ? कहा था तुझसे कि रात को दूध मत पी – अब बार-बार उठ-उठकर भागेगा ! अरे सुन ! अब गन्दे पानी की यह जो बाल्टी पड़ी है, उसी में अपना काम कर ले। बाहर अहाते में ले जाऊं तुझे, यह मेरे बस की बात नहीं !"

मीश्का चुपचाप लेट गया, तस्वीर को दोनों हाथों से भींचे रहा। वह करवट लेते हुए डरता कि कहीं तस्वीर मुड़मुड़ा न जाये। इसी तरह उसकी आंख लग गयी।

मुंह अंधेरे ही मीश्का की आंख खुल गयी। मां ने गाय दुहकर उसे रेवड़ के साथ बस भेजा ही था। मीश्का को देखा तो दोनों हाथों से सिर थाम लिया :

"अरे तुझे किसने काट खाया है ! इतने सवेरे ही क्यों उठ बैठा है ?"

मीश्का ने फ़ोटो को क़मीज़ के नीचे दबाया और मां के क़रीब से झटपट खलिहान की तरफ़ बढ़ गया और खत्ती में ग़ायब हो गया। खत्ती के चारों ओर बरडॉक की झाड़ियां खड़ी थीं और बिच्छू

बूटी की हरी दुर्गम दीवार कांटे फैलाये हुए थी। मीश्का कूद-फांदकर खत्ती में जा पहुंचा। उसने धूल और मुर्गियों की बीट हाथों से हटायी, बरडॉक का एक बड़ा-सा और सूखकर पीला पड़ा हुआ पत्ता तोड़ा, फ़ोटो को उसमें लपेटा और ज़मीन पर रखकर उस पर एक कंकड़ रख दिया ताकि वह हवा से उड़ न जाये।

सुबह से शाम तक पानी बरसता रहा। आकाश में सुरमई चंदवा छाया हुआ था। अहाते के गढ़हों में बूंदों की टपटप हो रही थी और सड़कों पर छोटे-छोटे नद-नाले बह रहे थे।

मीश्का को मजबूरन दिन भर घर में बैठे रहना पड़ा। झुटपुटा हो चला था, जब बाप और दादा सभा में भाग लेने के लिये कार्यकारिणी के दफ़्तर की ओर चले। मीश्का ने दादा की छज्जेदार टोपी पहनी और उनके पीछे-पीछे हो लिया। कार्यकारिणी का दफ़्तर गिरजाघर के चौकीदार के झोंपड़े में था। बड़ी मुश्किल से टेढ़ी-मेढ़ी और गन्दी-मन्दी सीढ़ियां चढ़कर मीश्का बरसाती में पहुंचा और वहां से कमरे में गया। कमरा खचाखच भरा हुआ था और तम्बाकू का धुआं छत को छू रहा था। खिड़की के पास मेज लगाये वही अजनबी बैठा था। वह कमरे में जमा होते हुए कज़्ज़ाकों से कुछ कह रहा था।

मीश्का चुपचाप सबसे पीछेवाली बेंच पर जा बैठा।

"साथियो! आपमें से कौन इस बात के हक़ में हैं कि फ़ोमा कोर्शुनोव को अध्यक्ष चुना जाये? कृपया अपने हाथ उठायें!"

मीश्का के आगे दूकानदार का दामाद प्रोख़ोर लिसेन्कोव बैठा था। वह चिल्लाया:

"भाइयो!.. मेरी प्रार्थना है कि इस व्यक्ति को उम्मीदवार न बनाया जाये। वह ईमानदार नहीं है। वह जब हमारे रेवड़ चराया करता था तभी यह बात साफ़ हो गयी थी..."

मीश्का ने मोची फ़ेदोत को खिड़की के दासे से उठते देखा। वह दोनों हाथ हिलाकर चिल्लाने लगा:

"साथियो, खाते-पीते लोग यह सहन नहीं कर सकते कि चरवाहा फ़ोमा सोवियत का अध्यक्ष चुना जाये। मगर चूंकि वह प्रोलेतारी और सोवियत सत्ता का हिमायती है इसलिये..."

मोची फ़ेदोत अपनी बात पूरी भी न कर पाया कि दरवाज़े के पास सटकर खड़े हुए मालदार कज़्ज़ाक ज़ोर-ज़ोर से पांव पटकने और सीटियां बजाने लगे। कार्यकारिणी के दफ़्तर में गुलगपाड़ा मच गया।

"चरवाहा नहीं चाहते!"

"फ़ौज से लौट आया है–अब फिर से ढोर चराया करे!"

"भाड़ में जाये फ़ोमा कोर्शुनोव!"

मीश्का ने बेंच के पास खड़े बाप के चेहरे पर नज़र डाली, उस पर हवाइयां उड़ रही थीं। बाप का ऐसा हाल देखकर खुद मीश्का के चेहरे का रंग उड़ गया।

"ख़ामोश रहो साथियो! सभा से निकाल दूंगा!" मेज़ पर ज़ोर से मुक्का मारकर अजनबी चिल्लाया।

"कज़्ज़ाकों में से अपना आदमी चुनेंगे!"

"नहीं चाहिये!.."

"नहीं चा-हि-ये..." कज़्ज़ाक शोर मचा रहे थे और सबसे ज़्यादा गला फाड़कर चीख रहा था दूकानदार का दामाद प्रोख़ोर।

एक हट्टा-कट्टा और लाल दाढ़ीवाला कज़्ज़ाक उछलकर बेंच पर खड़ा हो गया। उसके कान में बाली थी और फटे हुए कोट पर जहां-तहां पैबन्द लगे थे।

"भाइयो!.. मामला चौपट हुआ जा रहा है!.. होहल्ला करके ये अमीर लोग अपने आदमी को अध्यक्ष बना देना चाहते हैं!.. फिर से वही..."

वहां इतना शोर मच रहा था कि कानों के पर्दे फटे जा रहे थे। बालीवाला कज़्ज़ाक चीख-चीखकर जो कुछ कह रहा था उसका कोई-कोई शब्द ही मीश्का को सुनायी दिया:

"ज़मीन... फिर बंटवायी जायेगी... बंजर हमें... बढ़िया ज़मीन वे खुद दबा लेंगे..."

"प्रोख़ोर को अध्यक्ष बनाया जाये!" दरवाज़े के निकट लगातार यही स्वर गूंज रहा था।

"प्रोख़ोर! हो-हो-हो! हा-हा-हा!"

जैसे-तैसे शोर कम हुआ। अजनबी भौंहें चढ़ाकर और लाल-पीला होकर देर तक कुछ चीखता-चिल्लाता रहा।

"डांट-डपट रहा होगा!" मीश्का ने सोचा।

अजनबी ने ऊंची आवाज़ में पूछा:

"फ़ोमा कोर्शुनोव के हक़ में कौन-कौन हैं?"

बेंचों के ऊपर बहुत-से हाथ उठ गये। मीश्का ने भी हाथ ऊंचा कर दिया। कोई आदमी एक के बाद दूसरी बेंच पर कूदता हुआ ऊंचे-ऊंचे गिनती करने लगा:

"तिरसठ... चौसठ," मीश्का की ओर न देखते और उसके उठे हुए हाथ की ओर उंगली से इशारा करते हुए उसने कहा: "पैंसठ!"

अजनबी ने काग़ज़ पर कुछ लिखा और फिर ऊंची आवाज़ में कहा:

"जो प्रोखोर लिसेन्कोव के हक़ में हैं, हाथ उठायें!"

सत्ताईस धनी कज़्ज़ाकों और चक्की के मालिक येगोर ने झटपट हाथ ऊंचे कर दिये। मीश्का ने इर्द-गिर्द नज़र दौड़ायी और उसने भी हाथ ऊंचा कर दिया। गिनती करनेवाला व्यक्ति मीश्का के बराबर आया और ऊपर से उसे देखकर उसने ज़ोर से मीश्का का कान पकड़ लिया। मीश्का को बड़ा दर्द हुआ।

"अरे पाजी कहीं के! चल भाग यहां से वरना मरम्मत कर डालूंगा! चला है राय देने!"

इर्द-गिर्द बैठे लोग हंस दिये। गिनती करनेवाला व्यक्ति मीश्का को दरवाज़े तक लाया और पीठ पर ठोंक दिया। मीश्का को याद हो आया कि दादा और बाप के बीच तकरार हो जाने पर बाप ने क्या कहा था। गन्दी-मन्दी और फिसलनी सीढ़ियों से नीचे जाते हुए मीश्का ने भी वही शब्द दोहरा दिये:

"तुम्हें ऐसा करने का हक़ नहीं है!"

"ठहर, बड़ा आया है मुझे हक़ समझानेवाला!"

मीश्का को अपमान का कड़वा घूंट पीना पड़ा, बहुत खीझ आयी। मीश्का ने घर लौटकर आंसू बहाये और फिर मां से फ़रियाद की। मां ने डांट पिलायी:

"तू हर जगह घुसता क्यों फिरता रहता है! सभी जगह अपनी नाक घुसेड़ा करता है!.. तेरे कारण तो नाक में दम है मेरा!"

अगले दिन सुबह सब नाश्ता करने बैठे। नाश्ता अभी ख़त्म भी नहीं हुआ था कि बहुत दूर से बाजे की ढम-ढम सुनायी दी। बाप ने चमचा मेज़ पर रखा और मूंछें पोंछते हुए कहा:

"यह तो फ़ौजी बैंड लगता है!"

मीश्का तो हवा की तरह बेंच से ग़ायब हो गया। ड्योढ़ी का

दरवाज़ा बन्द हुआ। खिड़की से तेज़ क़दमों की चप-चप सुनायी देती रही...

दादा और बाप बाहर अहाते में आ गये। मां खिड़की से धड़ बाहर निकालकर देखने लगी।

सड़क के सिरे पर हरी लहरों-सी लहराती हुई लाल सेना की क़तारें चली आ रही थीं। आगे-आगे कुछ बैंडवाले बिगुल बजाते चले आ रहे थे और ढोलची ज़ोरों से ढोल को ढमढमा रहा था। पूरे गांव में बैंड की आवाज़ गूंज रही थी।

मीश्का की आंखें सभी ओर दौड़ रही थीं। शुरू में तो वह खोया-खोया-सा एक ही जगह पर चक्कर काटता रहा और फिर झपटकर बैंडवालों के पास जा पहुंचा। उसके हृदय में कोई मीठी-मीठी चीज़ हिलोरें ले रही थी, वह मुंह तक आने को बेक़रार थी... मीश्का धूल-मिट्टी से सने हुए लाल सेना के फ़ौजियों के प्रफुल्लित चेहरों को और गाल फुला-फुलाकर बाजों से आवाज़ निकालते हुए बैंडवालों को देखता रहा। फिर उसने अचानक और एकबारगी यह तय कर लिया:

"मैं भी जाऊंगा इनके साथ लड़ाई लड़ने!"

उसे अपना सपना याद हो आया। न जाने कहां से उसमें हिम्मत आ गयी कि किनारेवाले फ़ौजी का थैला थामकर उसने पूछा:

"आप कहां जा रहे हैं? लड़ाई लड़ने?"

"तो और क्या? लड़ने ही तो जा रहे हैं!"

"किस की ओर से आप लड़ेंगे?"

"सोवियत सत्ता की ओर से, पगले! अच्छा इधर आ, बीच में।"

उसने मीश्का को फ़ौजियों की क़तारों के बीच खींच लिया, किसी ने हंसते-हंसते उसकी गुद्दी पर चुटकी काट ली, किसी अन्य ने जेब में पड़ा हुआ गन्दा-सा चीनी का छोटा-सा टुकड़ा निकाला और उसके मुंह में ठूंस दिया। चौक में पहुंचने पर पहली क़तार में से किसी ने चीखकर कहा:

"थम जा!.."

लाल सेना के फ़ौजी रुके, चौक में इधर-उधर बिखरे और स्कूल की बाड़ की छाया में ठण्डी जगह देख सटकर लेट गये। घुटे हुए सिर-वाला लाल सेना का एक लम्बा-तड़ंगा फ़ौजी मीश्का के पास आया।

उसकी बग़ल में तलवार लटक रही थी। मुस्कराते हुए उसने पूछा :

"अरे तू कहां से आ गया इधर ?"

मीश्का ने अपने चेहरे पर बड़प्पन का भाव लाकर नीचे सरकते पाजामे को खींचकर ऊपर किया।

"मैं आप लोगों के साथ लड़ाई लड़ने चलूंगा !"

"साथी बटालियन कमांडर, इसे भी सहायकों में शामिल कर लो !" एक सैनिक ने ऊंची आवाज़ में कहा।

सभी ओर ज़ोर के क़हक़हे गूंज गये। मीश्का बार-बार पलकें झपकाता खड़ा रहा। मगर "बटालियन कमांडर" के अजीब-से नामवाले व्यक्ति ने भौंहें चढ़ायीं और ज़ोर से डांटते हुए कहा :

"हंसने की क्या बात है, मूर्ख ? स्पष्ट है कि हम इसे अपने साथ ले चलेंगे ... मगर एक शर्त पर," बटालियन कमांडर मीश्का की ओर घूमा और बोला, "देख तेरे पाजामे में सिर्फ़ एक पट्टी है। ऐसे काम नहीं चलेगा। ऐसे तो तू अपने हुलिये से हमारी हेठी करायेगा ... यह देख, मेरे पतलून में दो पट्टियां हैं, सभी के पतलूनों में दो हैं। जा भागकर जा, मां से दूसरी पट्टी सिलवा ला। हम तेरा यहीं इन्तज़ार करेंगे ..." इतना कहकर कमांडर बाड़ की तरफ़ घूमा और आंख मारते हुए उसने ऊंची आवाज़ में कहा, "तेरेश्चेन्को, जा, लाल सेना के नये फ़ौजी के लिये जल्दी से बन्दूक़ और फ़ौजी कोट लेकर आ !"

बाड़ की छाया में लेटे हुए फ़ौजियों में से एक उठा, टोप के छज्जे तक हाथ उठाकर उसने सलामी दी और कहा :

"जो हुक्म !.." वह जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाता हुआ बाड़ के साथ-साथ चल दिया।

"अच्छा अब तू उड़कर जा ! मां से झटपट पट्टी सिलवाकर लौट आ !"

मीश्का ने कड़ी नज़र से बटालियन कमांडर की तरफ़ देखा :

"देखो, मुझे धोखा नहीं देना !"

"क्या बात करता है ! कभी हो सकता है ? .."

चौक से घर तक काफ़ी फ़ासला था। मीश्का फाटक तक ही दौड़ा था कि दम फूल गया। सांस लेना कठिन हो गया। फाटक के पास पहुंचने पर उसने दौड़ते-दौड़ते ही पाजामा उतार लिया। नंगे पांव जल्दी से दौड़ता हुआ तेज़ झोंके की तरह मकान में जा घुसा :

"मां ... पाजामे की ... एक और पट्टी सी दे !"

घर में ख़ामोशी थी। अंगीठी के ऊपर मक्खियां भिनभिना रही थीं। मीश्का भागता हुआ अहाते में पहुंचा, खलिहान और बगीचे में गया – न बाप, न मां, न दादा। छलांगें मारता कोठे में गया – एक बोरी पर नज़र जा पड़ी। उसने चाकू लिया और उसकी लम्बी डोरी काट ली। सीने की फ़ुरसत मीश्का को कहां थी और फिर सीना आता भी तो नहीं था। उसने झटपट उसे पाजामे में बांध लिया और कंधे पर से ले जाकर सामने की तरफ़ गांठ दे दी। वह भागकर खत्ती में गया।

उसने कंकड़ हटाकर लेनिन का चित्र उठाया। अपनी ओर इशारा करते लेनिन के उठे हुए हाथ को उड़ती नज़र से देखा और सांस रोककर धीरे से फुसफुसाया :

"देख लिया न ?.. मैं भी जा रहा हूं तुम्हारी फ़ौज में !"

बड़ी सावधानी से उसने लेनिन की तस्वीर बरडॉक के पत्ते में लपेटी, उसे क़मीज़ के नीचे दबा लिया और उछलता-कूदता सड़क पर आ गया। वह एक हाथ से चित्र को छाती से चिपकाये रहा और दूसरे से पाजामा सम्भालता गया। जब दौड़ता हुआ पड़ोसिन की बाड़ के निकट से गुज़रा तो पुकारकर कहा :

"अनीसिमोव्ना !"

"क्या है ?"

"हमारे घरवालों से कह देना कि खाने पर मेरा इन्तज़ार न करें !"

"तू कहां उड़ा जा रहा है, पाजी ?"

मीश्का ने हाथ हिलाकर जवाब दिया :

"फ़ौजी नौकरी पर जा रहा हूं !"

वह भागता हुआ चौक में पहुंचा तो उसे जैसे काठ मार गया। चौक में तो आदमी का नाम-निशान तक न था। बाड़ के क़रीब सिगरेटों के टुकड़े, ख़ाली डिब्बे और किसी की फटी-पुरानी पट्टियां पड़ी थीं। गांव के बिल्कुल दूसरे सिरे से बैंड की आवाज़ और ठोस मिट्टी की कच्ची सड़क पर चलनेवालों के पैरों की धम-धम सुनायी दे रही थी।

मीश्का का गला आंसुओं से रुंध गया। वह चीख उठा और अपनी बची-बचायी पूरी ताक़त समेटकर भाग खड़ा हुआ। जा मिलता, जरूर वह उनसे जा मिलता, मगर चमार के अहाते के सामने पीले रंग का

दुमदार कुत्ता पसरा हुआ था। उसने गुर्राकर दांत दिखाये। मीश्का जब भागकर दूसरी सड़क पर पहुंचा तो बाजों की आवाज़ खो चुकी थी और पैरों की धम-धम भी।

* * *

दो दिन बाद गांव में कोई चालीस फ़ौजियों की एक टुकड़ी आयी। ये लोग घुटनों तक के भूरे फ़ेल्ट के बूट और मजदूरों के तेल लगे हुए कोट पहने थे। बाप कार्यकारिणी समिति से दोपहर का खाना खाने घर आया तो दादा से बोला:

"बापू, खत्ती में अनाज तैयार कर लो। अनाज-दस्ता आया है। अनाज देना होगा।"

फ़ौजी एक-एक घर में जाते थे, कोठारों-खत्तियों में संगीनें भोंक-भोंककर जांच करते थे और छिपाया हुआ अनाज निकलवाकर एक सामाजिक भण्डार में जमा करते जाते थे।

वे ग्राम-सोवियत के अध्यक्ष के घर भी आये। उनमें जो सबसे आगे-आगे था, मुंह में पाइप लगाये था। उसने दादा से पूछा:

"बड़े मियां, अनाज छिपा रखा है क्या? सच-सच बता दो!"

दादा ने दाढ़ी पर हाथ फेरा और बड़े गर्व से कहा:

"अजी क्या कहते हैं, मेरा बेटा तो खुद कम्युनिस्ट है!"

सब खत्ती में पहुंचे। पाइपवाले फ़ौजी ने एक नजर में सारे अनाज को आंका और मुस्करा दिया।

"बड़े मियां, इनमें से इतना हमारे भण्डार में पहुंचा दो, बाक़ी अपने परिवार की रोटी और बीज के लिये रख लो।"

दादा ने बूढ़े घोड़े को छकड़े में जोता, कुढ़ते-बड़बड़ाते आठ बोरियां छकड़े में लाद दीं। अफ़सोस से उन्होंने हाथ झटका और सामाजिक भण्डार की ओर छकड़ा बढ़ा दिया। मां को अनाज के इस तरह निकल जाने का दुख हुआ, वह कुछ रोयी-धोयी। मगर मीश्का ने अनाज की बोरियों की लदाई में दादा का हाथ बंटाया और फिर पादरी के बेटे वीत्का के साथ खेलने के लिये उसके घर चला गया।

मीश्का और वीत्का अभी रसोईघर में जाकर बैठे ही थे, उन्होंने काग़ज़ के घोड़े काट-काटकर फ़र्श पर बिछाये ही थे कि वे ही फ़ौजी

पादरी के रसोईघर में आ पहुंचे। पादरी साहब दौड़-धूप करने लगे, उनकी आवभगत को दौड़े आये लोग आदरभाव जताने लगे। उन्होंने फ़ौजियों से आराम-कमरे में जाने को कहा। मगर पाइपवाले फ़ौजी ने कड़ायी-रुखायी से कहा:

"खत्ती में चलिये! कहां जमा कर रखा है आपने अनाज?"

भीतरवाले कमरे से पादरी की बीवी लपककर वहां आयी। उसके बाल अस्त-व्यस्त हुए पड़े थे। अपने होंठों पर चोर की सी हंसी लाकर उसने कहा:

"विश्वास कीजिये जनाब, हमारे घर में तो अनाज का एक दाना भी नहीं है! मेरे पति ने अपने श्रद्धालुओं के घरों में अभी फेरा नहीं किया..."

"तहखाना है आपके यहां?"

"नहीं, हमारे यहां तहखाना नहीं है... हम तो खत्ती में ही पहले अनाज जमा करते थे..."

मीश्का को याद हो आया कि कैसे वह वीत्का के साथ रसोईघर से एक बड़े-से तहखाने में जाया करता था। पादरी की बीवी की तरफ़ मुंह करके उसने कहा:

"रसोईघर से मैं और वीत्का तो तहखाने में उतरा करते थे, आप भूल गयीं क्या?"

पादरी की बीवी के चेहरे का रंग उड़ गया, मगर वह हंस दी:

"तू भूल रहा है छोकरे! वीत्का, तुम लोग बाहर बगीचे में जाकर खेलो!"

पाइपवाले फ़ौजी ने आंखें झपकायीं और मीश्का की ओर देखकर मुस्कराया:

"लड़के, किधर से रास्ता है उस तहखाने का?"

पादरी की बीवी बेचैनी से उंगलियां चटकाती हुई बोली:

"खूब हैं आप भी, इस बेवकूफ़ छोकरे की बात पर विश्वास कर रहे हैं! मैं आपको यक़ीन दिलाती हूं कि हमारे घर में तहखाना नहीं है!"

पादरी ने अपने चोग़े के छोर झटकते हुए कहा:

"आइये, कुछ जलपान कीजिये! चलिये कमरे में!"

पादरी की बीवी ने मीश्का के पास से गुज़रते हुए उसके हाथ पर ज़ोर की चुटकी काटी और मुस्कराकर बड़े प्यार से कहा :

"जाओ बच्चो, बगीचे में जाओ! यहां गड़बड़ी नहीं करो!"

फ़ौजियों ने आंखों में इशारे किये और रसोईघर में इधर-उधर चक्कर काटते हुए बन्दूक़ों के दस्तों से फ़र्श को ठोक-बजाकर देखने लगे। दीवार के पास से उन्होंने मेज़ खिसकायी और टाट उठाया। पाइपवाले फ़ौजी ने फ़र्श का एक तख़्ता उलटा, तहख़ाने में झांका और सिर हिलाते हुए कहा :

"शर्म नहीं आती आप लोगों को? कह रहे थे कि अनाज का एक दाना भी नहीं है और तहख़ाने में ऊपर तक गेहूं भरा पड़ा है!"

पादरी की बीवी ने मीश्का को ऐसी काटती नज़र से देखा कि उसका कलेजा कांप उठा। उसका मन हुआ कि झटपट भाग ले घर को। वह उठा और आंगन में आया। पादरी की बीवी भी लपकती हुई उसके पीछे-पीछे ड्योढ़ी में पहुंची और उस पर झपटी। मीश्का को बालों से पकड़कर वह उसे फ़र्श पर घसीटने लगी।

मीश्का ने बड़ी मुश्किल से अपने बाल छुड़वाये और जान छोड़कर घर की तरफ़ भागा। आंसू थे कि झड़ी बनकर बरस रहे थे। मां को उसने रो-रोकर सारा हाल सुनाया और वह तो बस सिर थामकर रह गयी :

"हाय रे, क्या करूं मैं तेरा?.. दूर हो जा मेरी आंखों के सामने से, वरना मार मारकर चटनी बना दूंगी!.."

इस दिन के बाद तो यह नियम बन गया कि जब कोई मीश्का का अपमान करता, वह खत्ती में जा घुसता। पत्थर हटाता, बरडॉक के पत्ते से चित्र निकालता, आंसुओं से चित्र को भिगोता और लेनिन को अपना दुख-दर्द सुनाता, अपमान करनेवाले के खिलाफ़ शिकवा-शिकायत करता।

इसी तरह एक सप्ताह बीत गया। मीश्का को ऊब अनुभव होने लगी। साथ खेलनेवाला कोई नहीं था। अड़ोस-पड़ोस के बच्चे कन्नी काटते। "हरामी" के साथ अब बड़ों से सुनी-सुनायी एक उपाधि और जोड़ दी गयी थी। लड़के पीछे से आवाज़ें कसते :

"अरे ओ कम्युनिस्ट! ओ सड़े अंडे, इधर देख!"

एक दिन क्या हुआ कि मीश्का सांझ गहराने के पहले तालाब

से घर लौटा। वह अभी घर के भीतर नहीं पहुंचा था कि बाप को तीखी आवाज़ में कुछ कहते सुना। मां गिड़गिड़ाती हुई उसी तरह विलाप कर रही थी जैसे कि किसी के मर जाने पर किया जाता है। मीश्का ने दरवाज़े में दाखिल होते ही देखा कि बाप अपना फ़ौजी कोट तह कर रहा है और बड़े बूट कस रहा है।

"बापू, तुम कहां चले?"

बाप हंस दिया। उसने कहा :

"बेटा, तू अपनी मां को समझा-बूझा... इसके रोने-धोने से मेरा कलेजा फटा जा रहा है। मैं लड़ाई पर जा रहा हूं और यह मुझसे चिपकी जा रही है!"

"मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा, बापू!"

पिता ने पेटी कसी और फ़ीतोंवाली टोपी पहनी।

"तू भी कमाल का छोकरा है! एक ही साथ तो हम दोनों को नहीं जाना चाहिये घर से! मैं लौट आऊंगा तब तुम जाना, वरना जब फ़सल पकेगी तो कौन काटेगा? मां तुम्हारी घर के काम-काज में उलझी रहती है और दादा हो गये बूढ़े..."

पिता से विदा होते समय मीश्का ने आंसू अन्दर ही अन्दर पी लिये। इतना ही नहीं, मुस्करा तक दिया। मां, पहले की भांति, बाप की गर्दन से लिपट गयी। बाप ने ज़बर्दस्ती उससे अपने को आज़ाद किया। दादा ने केवल आह भरी। लड़ाई पर जानेवाले को चूमते हुए उन्होंने उसके कान में फुसफुसाकर कहा :

"फ़ोमा... मेरे प्यारे बेटे!.. अच्छा हो कि तुम न जाओ! तुम्हारे बिना, शायद तुम्हारे बिना भी काम चल जाये! अगर तुम मारे गये तो हम कहीं के न रहेंगे!.."

"हटाओ बापू... यह बात ठीक नहीं है। अगर सभी बीवियों की गोद में छिपकर बैठे रहेंगे तो हमारी सत्ता की रक्षा कौन करेगा?"

"अगर ऐसा ही ठीक समझते हो तो जाओ।"

दादा ने मुंह दूसरी ओर किया और चुपके-से आंसू पोंछ डाले। घर के लोग बाप को कार्यकारिणी के दफ़्तर तक पहुंचाने गये। वहां आगन में कोई बीस आदमी जमा थे, बन्दूकें लिये हुए। मीश्का के बाप ने भी बन्दूक़ ली और आख़िरी बार मीश्का को चूमा। फिर बाक़ी

लोगों के साथ सड़क पर क़दम बढ़ाता हुआ वह भी गांव के बाहर की ओर चला गया।

मीश्का दादा के साथ घर लौटा। उसकी मां मुश्किल से अपने को सम्भालती और लड़खड़ाती हुई पीछे-पीछे चली आ रही थी। गांव में कहीं-कहीं कुत्ते भौंक रहे थे, कहीं-कहीं रोशनी नज़र आ रही थी। गांव पर रात का अंधेरा इस तरह छाया जा रहा था मानो किसी बुढ़िया ने काली ओढ़नी ओढ़ ली हो। बूंदा-बांदी हो रही थी, गांव से कुछ दूर स्तेपी में बिजली कौंध-कौंध उठती थी और रह-रहकर बादलों की गरज सुनायी पड़ती थी।

वे घर के निकट पहुंच गये। मीश्का रास्ते भर चुप रहा, मगर अब उसने पूछा:

"दादा, बापू किससे लड़ने गये हैं?"

"अरे, छोड़ भी मेरा पिंड!"

"दादा!"

"क्या है?"

"किससे लड़ेंगे मेरे बापू?"

दादा ने फाटक की चटखनी लगाते हुए जवाब दिया:

"हमारे गांव के पास कुछ दुष्ट लोगों ने मुसीबत कर रखी है। लोग उसे 'गिरोह' बताते हैं, मगर मैं तो यही समझता हूं कि कोई डाकू-लुटेरे होंगे... तुम्हारा बाप उन्हीं से लड़ने गया है।"

"बहुत हैं क्या वे लोग दादा?"

"सुना है कि कोई दो सौ हैं... अच्छा अब जाकर सो जा। तुझे क्या लेना-देना है इन बातों से!"

रात को आवाज़ों के शोर से मीश्का की आंख खुल गयी। उसने अपना बिस्तर टटोला तो दादा को ग़ायब पाया।

"दादा, कहां हो तुम?"

"चुपचाप पड़ा रह और सो जा!"

मीश्का उठा और अंधेरे में रास्ता टटोलता हुआ खिड़की तक जा पहुंचा। दादा सिर्फ़ जांघिया पहने हुए बेंच पर बैठे थे, सिर उनका खिड़की से बाहर निकला हुआ था और वे बहुत ग़ौर से आवाज़ें सुन रहे थे। मीश्का ने भी कान लगा दिये। रात के गहरे सन्नाटे में उसे गांव के परे बार-बार गोली चलने की आवाज़ साफ़ सुनायी दी। उसके

बाद तो गोलियों की बौछार ही लग गयी।

"तड़ाक! तड़-तड़-तड़! तड़-तड़-तड़ाक!"

ऐसा लगता था मानो कोई कीलें ठोंक रहा हो।

मीश्का का दिल दहल उठा। वह दादा से जा लिपटा और उसने पूछा:

"यह मेरे बापू गोली चला रहे हैं न?"

दादा चुप हो गये और मां फिर से विलाप करने लगी।

पौ फटने तक गोलियां चलती रहीं और उसके बाद सन्नाटा हो गया। मीश्का वहीं बेंच पर सिमट-सिमटाकर लेट गया और बेचैन, बोझिल और दुख की नींद सो गया। उजाला हुआ तो कार्यकारिणी समिति के कार्यालय की ओर घुड़सवारों का एक दल तेज़ी से आता दिखायी दिया। दादा ने मीश्का को जगाया और ख़ुद बाहर भागे।

कार्यकारिणी समिति के आंगन में धुएं का खम्भा-सा उठा और आग की लपलपाती हुई लपटें इमारतों की ओर बढ़ चलीं। सड़कों पर घुड़सवार घोड़े कुदाते फिर रहे थे। एक घुड़सवार अहाते के पास आया और उसने पुकारकर दादा से पूछा:

"बूढ़े, घोड़ा है?"

"हां है..."

"जोतकर गांव के बाहर चला जा! वहां झाड़ियों में तुम्हारे कम्युनिस्ट पड़े हैं!... जा, ले आ लादकर! सगे-सम्बन्धियों से कह देना उनकी मिट्टी ठिकाने लगा लें!"

दादा ने झटपट घोड़े को जोता, कांपते हाथों से लगामें सम्भालीं और तेज़ी से अहाते के बाहर निकल गये।

गांव में तो हाय-दुहाई मच गयी। डाकू घोड़ों से उतरकर खलिहानों से सूखी घास निकाल लाये, भेड़-बकरियां काटने लगे। एक डाकू अनीसिमोव्ना के अहाते के क़रीब घोड़े से नीचे कूदा और घर में जा घुसा। मीश्का ने अनीसिमोव्ना को भर्राई आवाज़ में रोते-कलपते सुना। डाकू तलवार लिये हुए धड़ाधड़ बाहर आया, सीढ़ियों पर बैठ गया और उसने जूते उतारे। उसने अनीसिमोव्ना के फूलदार और पर्वों के अवसरों पर पहने जानेवाले शॉल के दो टुकड़े किये, अपनी गन्दी पट्टियां उतारीं और उनकी जगह उन्हें अपनी टांगों पर लपेट लिया।

मीश्का कोठे में जाकर बिस्तर पर लेट गया। उसने सिर तकिये

में गड़ा दिया और तभी उठा जब फाटक चरमरा उठा। भागा हुआ दरवाज़े पर गया। देखा कि दादा की दाढ़ी आंसुओं से तर है और वह घोड़े को अहाते के अन्दर ला रहे हैं।

पीछे छकड़े में एक आदमी नंगे पांव पड़ा था। उसकी बांहें फैली हुई थीं, छकड़ा जब हिचकोले खाता तो ... सिर दायें-बायें टकराता और छकड़े के तख्तों पर गाढ़ा-गाढ़ा काला ख़ून रिस रहा था...

मीश्का कांपते पैरों से छकड़े के क़रीब गया। उसने चेहरे पर नज़र डाली जो तलवार के वारों से बिल्कुल टुकड़े-टुकड़े हुआ पड़ा था। दांत बाहर निकले हुए थे, हड्डी समेत कटा हुआ गाल लटक रहा था और बाहर को निकली, ख़ून से लथपथ आंख पर हिलती-डुलती हुई बड़ी-सी हरी मक्खी बैठी थी।

मीश्का नहीं पहचान पाया कि वह लाश किसकी है। वह डर से कुछ कुछ कांप रहा था। उसने इस व्यक्ति की छाती को देखा, ख़ून से तर-बतर नीली और सफ़ेद धारियोंवाली क़मीज़ की ओर उसका ध्यान गया और वह इस तरह कांप उठा मानो किसी ने पीछे से उसकी टांगों पर कसकर चोट की हो। फटी-फटी आंखों से उसने एक बार फिर उस निश्चल और स्याह पड़े हुए चेहरे को देखा और उछलकर छकड़े पर जा पहुंचा।

"उठो बापू! उठो मेरे प्यारे बापू!" वह छकड़े से नीचे गिर पड़ा, उसने भाग जाना चाहा मगर टांगें जवाब दे गयीं। हाथों-पैरों के बल रेंगता हुआ वह बड़ी मुश्किल से घर के दरवाज़े तक पहुंचा और लुढ़क गया।

* *

दादा की आंखें अन्दर को धंस गयी थीं। सिर हिलता और हिचकोले खा रहा था, होंठ हिलते-डुलते थे, मगर उनसे कोई आवाज़ नहीं निकलती थी।

दादा देर तक चुपचाप मीश्का का सिर सहलाते रहे। फिर बिस्तर पर औंधी पड़ी हुई मां की ओर देखते हुए उन्होंने फुसफुसाकर मीश्का से कहा:

"चल बेटे, बाहर अहाते में चलें..."

दादा ने मीश्का का हाथ थामा और दरवाज़े की ओर चले। कोठे का दरवाज़ा लांघते हुए मीश्का ने आंखें मूंद लीं, वह सिहर उठा। कोठे में मेज़ पर बाप की लाश पड़ी थी, गुमसुम और गम्भीर। उसका ख़ून धोकर साफ़ किया जा चुका था, मगर मीश्का अपनी आंखों के सामने शीशे की तरह पथरायी और ख़ून से सनी वही आंख देख रहा था जिस पर बड़ी हरी मक्खी बैठी थी।

दादा ने काफ़ी देर लगाकर कुएं से रस्सी खोली, फिर अस्तबल की ओर गये और घोड़े को बाहर लाये। न जाने क्यों अपनी आस्तीनों से उन्होंने घोड़े के मुंह से झाग पोंछी। फिर उसे लगाम पहनायी और कान लगाकर बाहर की आवाज़ें सुनते रहे। गांव में ख़ूब शोर मचा हुआ था, ठहाके गूंज रहे थे। अहाते के क़रीब से दो घुड़सवार गुज़रे, अंधेरे में उनकी सिगरेटों की चिंगारियां चमकीं और उनकी यह बातचीत सुनायी पड़ी:

"क्यों, कैसी रही, करवा दी न हमने भूखों से इनकी पिटायी!.. अब दूसरी दुनिया में पहुंचकर याद करेंगे कि लोगों से अनाज छीनने का क्या नतीजा होता है!.."

घोड़ों की टापों की आवाज़ जब बिल्कुल बन्द हो गयी तो दादा ने मीश्का के कान में धीरे से कहा:

"देख बेटे, मैं हूं बूढ़ा आदमी... घोड़े की सवारी मेरे बस की बात नहीं... तुझे इस पर चढ़ा देता हूं, तू भगवान का नाम लेकर प्रोनीन गांव को चला जा... रास्ता मैं तुझे दिखा दूंगा... वहां फ़ौज के वे जवान पड़े होंगे जो बैंड बजाते हुए हमारे गांव से गुज़रे थे... उनसे कहना कि तुरंत हमारे गांव की ओर चले आयें – यहां डाकुओं का गिरोह है!.. समझ गये?.."

मीश्का ने चुपचाप सिर हिलाकर हामी भरी। दादा ने मीश्का को घोड़े पर बिठाया, रस्सी से दोनों पांव ज़ीन के साथ बांध दिये ताकि वह गिर न पड़े और खलिहान, तालाब और डाकुओं के अड्डे के क़रीब से होते हुए घोड़े को स्तेपी में लाये।

"देख बेटा, उस टीले की तरफ़ घाटी चली गयी है, उसके साथ-साथ घोड़ा चलाते जाना, इधर-उधर नहीं मुड़ना! सीधा गांव में जा पहुंचेगा। अच्छा अब चल दे मेरे लाल!"

दादा ने मीश्का को चूमा और घोड़े को धीरे से थपथपाया।

रात चांदनी थी, उजली-उजली थी। घोड़ा हल्के क़दमों से दौड़ने और नथने फुलाने लगा। पीठ के बोझ को हल्का महसूस करते हुए वह सम्भालकर क़दम रखने लगा। मीश्का उसे लगाम छुआता जाता था, गर्दन थपथपाता था और धचकों से उछल-उछल जाता था।

अनाज की हरी घनी बालों के बीच बटेर मस्ती में चहक रहे थे। घाटी की तह में झरने का पानी अपना झर-झर का गीत अलाप रहा था। हवा में कुछ-कुछ सिहरन थी।

स्तेपी में अकेले होने से मीश्का को डर लगने लगा। उसने दोनों बांहें घोड़े की गर्म-गर्म गर्दन के गिर्द डाल दीं और उसका ठिठुरता-कांपता छोटा बदन घोड़े से चिपक गया।

घाटी ऊपर की ओर जाती, नीचे ढलती और फिर ऊपर की ओर ऊंची उठती। मीश्का को पीछे की ओर देखने से डर लगता। वह कुछ फुसफुसाता हुआ यह प्रयत्न कर रहा था कि उसके दिमाग़ में किसी तरह का विचार न आये। सन्नाटा उसके कानों में सांय-सांय बज रहा था, उसने आंखें मूंद रखी थीं।

घोड़े ने सिर झटका, नथने फुलाये और क़दम तेज़ कर दिये। मीश्का ने ज़रा-सी आंख खोलकर नीचे की ओर देखा। पहाड़ी के दामन में उसे मद्धिम रोशनियां दिखायी दीं। हवा के झोंकों के साथ कुत्तों के भौंकने की आवाज़ भी सुनायी दी।

घड़ी भर में खुशी के मारे मीश्का के दिल में गर्मी आ गयी। उसने घोड़े को पैर से एड़ लगायी और टिटकारी भरी:

"टिन-ट-ट-ट!"

कुत्तों के भौंकने की आवाज़ निकट आ गयी। टीले पर पवनचक्की के पंखों की धुंधली-सी रेखायें नज़र आयीं।

"कौन जा रहा है यह?" पवनचक्की से आवाज़ आयी।

मीश्का ने फिर चुपचाप घोड़े से आगे बढ़ते रहने का आग्रह किया। ऊंघते हुए गांव में मुर्गों की बांग सुनायी दी।

"रुक जाओ!.. कौन जा रहा है?.. गोली मार दूंगा!.."

मीश्का डर गया, उसने लगामें खींचीं। मगर घोड़े को क़रीब ही घोड़ों की उपस्थिति की गंध आ गयी, वह ज़ोर से हिनहिनाया और सवार की परवाह न करते हुए सरपट दौड़ चला।

"ठहरो!"

पवनचक्की के क़रीब से गोलियों की तड़तड़ सुनायी दी। मीश्का की चीख घोड़ों की टापों की आवाज़ में डूब गयी। उसके घोड़े का दम फूल गया, वह पिछली टांगों के बल खड़ा हुआ और दायें पहलू ढह पड़ा।

मीश्का अब अपनी टांग में बहुत ही ज़ोर का, जानलेवा दर्द महसूस कर रहा था। चीख उसके होंठों पर जमकर रह गयी। घोड़ा मीश्का की टांग पर अधिकाधिक बोझ डालता गया।

घोड़ों की टापे क़रीब आयीं। तलवारें बांधे हुए दो सवार क़रीब पहुंचे, घोड़ों से कूदे और मीश्का पर झुक गये।

"हाय ग़ज़ब हो गया, यह तो बेचारा कोई छोकरा है!.."

"कहीं जान तो नहीं ले ली?!"

किसी ने क़मीज़ के अन्दर हाथ ले जाकर मीश्का के दिल की धड़कन जांची। मीश्का के मुंह के पास तम्बाकू के लहरे आ रहे थे। किसी ने खुश होते हुए कहा:

"जिन्दा है!.. घोड़े ने कहीं टांग न कुचल डाली हो?.."

बेहोश होता हुआ मीश्का फुसफुसाया:

"गांव में गिरोह है... बापू को मार डाला... समिति का कार्यालय जला दिया, दादा ने कहा है कि आप फ़ौरन वहां पहुंचें!"

मीश्का की धुंधलाती हुई आंखों के सामने रंगीन च[illegible]-से घूमने लगे...

अपने बापू को उसने सामने से गुज़रते देखा, लाल मूंछों को मरोड़ते और हंसते हुए। मगर उसकी आंख पर एक बड़ी-सी झूलती हुई हरी मक्खी बैठी थी। फिर दादा सामने आये, सिर हिलाते और बिगड़ते हुए। इसके बाद मां दिखायी पड़ी। सब के बाद उसके सामने उभरा छोटे क़द का चौड़े माथेवाला व्यक्ति जिसका हाथ उठा था। उसका हाथ सीधे मीश्का की ओर इशारा कर रहा था।

"साथी लेनिन!.." मीश्का अपनी फटी-सी आवाज़ में पुकार उठा। ज़ोर लगाकर उसने सिर ऊपर उठाया, वह मुस्कराया – और उसने अपने दोनों हाथ लेनिन की ओर बढ़ा दिये।

१९२५

नीलाभ स्तेपी

मैं और ज़खार दादा दोन के किनारे धूप से झुलसे टीले पर जंगली बेर की छाया में लेटे हैं। आकाश में बादलों की घुंघराली शृंखला के पास कत्थई चील मंडरा रही है। चिड़ियों की बीट से चितकबरी बेर की पत्तियों से हमें कोई राहत नहीं मिल रही है। कड़ाके की गर्मी से कान भन्ना रहे हैं। नीचे मंथर-गति से बहती दोन को या पैरों के पास पड़े तरबूज़ के सूखे-पिचके छिलकों को देखकर मुंह में लसीली राल भर आती है और इस राल को थूकने में भी आलसय आता है।

घाटी में सूखती झील के पास भेड़ों का जमघट है। थकी-मांदी वे दुंबे मटका रही हैं, धूल के कारण ज़ोर-ज़ोर से छींक रही हैं। बंध के पास हट्टा-कट्टा मेमना पिछली टांगों पर खड़ा भदमैली भेड़ के थन चूस रहा है। कभी-कभी वह मां के थन को सिर से दबाता है, भेड़ कराह रही है, दोहरी होकर मेमने को दूध पिला रही है, और मुझे लगता है कि उसकी आंखों में व्यथा का भाव है।

ज़खार दादा मेरे बग़ल में बैठे हैं। बुनी हुई ऊनी क़मीज़ को उतारकर वह आंखें मिचमिचाते हुए जोड़ों और सिलवटों में टटोल-टटोलकर कुछ ढूंढ़ रहे हैं। दादा की उम्र एक कम पूरे सत्तर है। नंगी पीठ झुर्रियों के विचित्र बेल-बूटों से ढकी है, खाल के नीचे से पखौड़ों की पैनी हड्डियां उभरी हुई हैं, पर स्लेटी भौहोंवाली आंखें – नीली और युवा हैं, दृष्टि चपल और पैनी है।

क़मीज़ में मिले चिल्लड को वह बड़ी मुश्किल से अपनी कांपती, रूखी उंगलियों में पकड़े हैं, वह उसे सावधानी से, बड़े प्यार से पकड़े हुए हैं, फिर उसे अपने से दूर, ज़मीन पर रखकर उन्होंने हवा में सलीब का निशान बनाया और बुदबुदाये :

"रेंग जा यहां से दूर, जानवर! शायद जीना चाहता है न? क्या? वही तो मैं कह रहा हूं... देखो तो सही... जी भरकर खून चूस लिया... जमींदार की तरह..."

कराहकर दादा ने क़मीज़ चढ़ा ली और पीछे की ओर सिर झुकाकर लकड़ी की बोतल से गट-गट गुनगुना पानी पीने लगे। हर घूंट के साथ टेंटुआ ऊपर खिसकता। ठोड़ी से गले तक दो सिलवटें लटकी हैं, दाढ़ी पर बूंदें लुढ़क रही हैं, अधखुली केसरी पलकों से छनकर धूप लाल हो गयी है।

बोतल में डाट लगाते हुए उन्होंने मेरी ओर तिरछी नज़र डाली, नज़रें मिलने पर उन्होंने होंठ चबाये और स्तेपी को देखने लगे। घाटी के उस पार धुंध की तरह मरीचिका व्याप्त है, तपती धरती पर बहती हवा में थाइम के मधु की मादक गंध बसी है। दादा ने चुपचाप गड़रियों की हंकनी एक तरफ़ उठाकर रखी और धूम्रपान से पीली उंगली से इशारा करके बोले :

"देख रहे हो इस बीहड़ के उस पार सफ़ेदों की फुनगियां? तोमीलिन खानदान की जागीर – तोपोल्योव्का है। वहीं पास ही में किसानों की बस्ती तोपोल्योव्का है, पहले वे भू-दास थे। मेरा बाप अपनी जिंदगी के आखिरी दिन तक जागीरदार का कोचवान रहा। जब मैं छोकरा था पिता ने मुझे बताया था कि मालिक येवग्राफ़ तोमीलिन ने पालतू सारस के बदले में उन्हें पड़ोसी जमींदार से लिया था। पिता की मौत के बाद मैं उनकी जगह कोचवान का काम करने लगा। मालिक की उम्र तब साठ के क़रीब थी। बड़ा हट्टा-कट्टा था। जवानी में ज़ार की गारद में था, फिर नौकरी छोड़कर दोन के इलाक़े में बाक़ी दिन गुज़ारने आ गया। दोन के इलाक़े में उनकी ज़मीन कज़्ज़ाकों ने दबा ली, और सरकार ने मालिक को सरातोव प्रांत में तीन हज़ार देस्यातीना* ज़मीन बख़्श दी। यह ज़मीन वह सरातोव के किसानों को बंटाई पर चढ़ाता था और खुद तोपोल्योव्का में रहता था।

"बड़ा अजीब आदमी था। हमेशा बढ़िया ऊनी अंगरखा पहनकर और कटार लटकाकर घूमता था। जब कहीं जाना होता तो जैसे ही हम तोपोल्योव्का के बाहर निकलते, हुक्म देता :

---

* देस्यातीना – पुरानी रूसी माप। १ देस्यातीना लगभग २,७ एकड़ के बराबर था। – सं०

"'दौड़ा, हरामी!'

"मैं चाबुक चलाता। घोड़े सरपट दौड़ने लगते, तेज़ हवा आंखों से बहते पानी को न सुखा पाती। रास्ता ऊबड़-खाबड़ होता – बसंत की बाढ़ से वह जगह-जगह कट जाता – अगले पहिये तो फटाक से निकल जाते, पर पिछले धम्म से उछलते। आधा मील आगे चले जाते तो मालिक चिल्लाता: 'मोड़ पीछे!' मैं उल्टा मोड़ता और पूरी रफ़्तार से उस कटाव की ओर दौड़ पड़ते... दो-तीन बार उस मरदुए कटाव को पार करते, जब तक कमानी न टूट जाती या बग्घी के पहिये न उखड़ जाते। तब मेरा मालिक बड़बड़ाकर उठता और पैदल चल पड़ता, और मैं पीछे-पीछे लगाम थामे घोड़ों को लिये जाता। मनबहलाव का उसका एक तरीक़ा यह था: जागीर से हम बाहर निकलते और वह मेरे पास कोचवान की सीट पर आ बैठता, मेरे हाथ से चाबुक छीनकर कहता: 'बीचवाले को दौड़ा!..' मैं बीचवाले घोड़े को दौड़ाता और वह बग़लवाले पर चाबुक चलाता। बग्घी में तीन घोड़े होते थे, बग़लों में दोन की ख़ालिस नसल के घोड़े जोते जाते थे, वे सांप की तरह बल खाकर ज़मीन पर सिर लटका देते थे।

"और वह उनमें से किसी एक पर चाबुक चलाता, बिचारा झाग से ढक जाता... फिर मालिक कटार निकालता, और झुककर, जैसे बाल को उस्तरे से काटते हैं वैसे ही जोत काट देता। घोड़ा दो-एक फ़र्लांग तक ताबड़तोड़ दौड़ा जाता, और धम्म से ढह जाता, नथुनों से ख़ून की धारा फूट पड़ती – हो गया काम तमाम!.. दूसरे का भी यही हाल होता... बीचवाला घोड़ा भी जब तक निढाल नहीं हो जाता तब तक दौड़ता रहता, मालिक को क्या परवाह, बस उसका मन बहल जाता, गालों पर लाली छा जाती।

"कभी भी आख़िर तक सवारी में नहीं गया: या तो बग्घी तुड़वा देता या घोड़ों को मरवा देता, और बाद में पैदल जाता... बड़े मज़े का था मालिक... बीती बात हो गयी है, भगवान हमारा फ़ैसला करे... उसे मेरी लुगाई का चस्का पड़ गया, वह घर में नौकरानी थी। वह नौकरों के कमरे में दौड़ी आती, शमीज़ चिथड़े-चिथड़े होती – फूट-फूटकर रोती। देखता क्या हूं, छातियां उसकी दांतों से कटी हुई हैं, खाल चिथड़ों की तरह लटकी है... एक बार की बात है रात को मालिक ने मुझे कंपाउंडर को बुलाने भेजा। मैं तो जानता था कि

इसकी कोई ज़रूरत नहीं है, समझ गया कि बात क्या है, स्तेपी में रात घिरने का इंतज़ार करके लौट आया। हवेली में खलिहान की तरफ़ से घुसा, घोड़ों को बाग़ में छोड़कर मैंने चाबुक संभाला और अपनी कोठरी की ओर चल पड़ा। दरवाज़ा खोला, दियासलाई जान-बूझकर नहीं जलायी, सुनता हूं कि पलंग पर उथल-पुथल हो रही है... जैसे ही मेरा मालिक उठा, मैंने उसे चाबुक मारा, और मेरे चाबुक के सिरे में सीसा भरा था... सुनता हूं कि वह खिड़की की ओर रास्ता बना रहा है, मैंने अंधेरे में एक बार और उसके माथे पर वार किया। वह खिड़की से कूदकर भाग गया, मैंने लुगाई की थोड़ी पिटाई की और सो गया। कोई पांचेक दिन बाद हम क़स्बे को जा रहे थे, मैं बग्घी पर धुस्सा तान रहा था, मालिक ने मेरा चाबुक उठाया और हाथों में घुमा-घुमाकर उसके सिरे की जांच करने लगा, जब उसने सीसे को टटोला तो पूछने लगा:

"'कुत्ते की औलाद, तूने चाबुक में सीसा क्यों सी रखा है?'

"'आप ही ने तो हुक्म दिया था,' मैंने जवाब दिया।

"वह कुछ नहीं बोला, सारे रास्ते पहले कटाव तक दांत भींचकर सीटी बजाता रहा, मैं पल भर के लिये मुड़ा तो देखता हूं: बालों ने माथा ढक रखा है और छज्जेदार टोपी काफ़ी झुकी हुई है...

"दो-एक साल बाद उसे फ़ालिज पड़ गया। उसे उस्त-मेद्वेदित्सा ले जाया गया, ढेरों डाक्टर बुलवाये गये, और वह फ़र्श पर पड़ा था, शरीर सारा काला पड़ गया। जेब से नोटों की गड्डियां निकालकर पटक दीं, गला फाड़कर चिल्लाने लगा: 'इलाज करो, हरामियो! सब दे दूंगा तुम्हें!..

"बस पैसे के साथ भगवान को प्यारा हो गया। बेटा वारिस रह गया, फ़ौजी अफ़सर था। जब छोटा था तो ज़िंदा पिल्लों की खाल उतारकर उन्हें छोड़ देता था। बाप पर गया था। पर जब बड़ा हो गया तो ऐसी आदतें छोड़ दीं। लम्बे क़द का पतला-दुबला था, बचपन से ही लुगाइयों की तरह उसकी आंखों के नीचे काले गड्ढे थे... नाक पर सुनहरा चश्मा चढ़ाये रहता था, चश्मा फ़ीतेवाला था। जर्मनों से लड़ाई के वक़्त साइबेरिया में युद्धबंदियों का अफ़सर था, और तख़्ता-पलट के बाद हमारे इलाक़े में आ गया। तब तक मेरे पोते बड़े हो चुके थे, बेटा तो भगवान को प्यारा हो गया था। बड़े पोते

सेम्योन की शादी कर दी थी और अनिकेई अभी मटरगश्ती कर रहा था। बस उनके साथ रहता, अपनी ज़िंदगी के दिन गुज़ार रहा था... बसंत में फिर सत्ता पलट गयी। हमारे किसानों ने जवान मालिक को जागीर से निकाल दिया, उसी दिन सभा में सेम्योन किसानों को जागीरदार की ज़मीन आपस में बांटने और उसका माल-असबाब अपने-अपने घर ले जाने के लिये मनाने लगा। बस यही कर दिया गया: सामान घरों में चला गया, ज़मीन बांट दी गयी और जुताई शुरू हो गयी। एक हफ़्ते बाद, शायद इससे भी जल्दी, अफ़वाह उड़ती-उड़ती पहुंची कि जागीरदार क़ज़्ज़ाकों के साथ हमारी बस्ती में मार-काट करने आ रहा है। हमने फ़ौरन दो छकड़े स्टेशन पर भेज दिये हथियार लाने के लिये। ईस्टर के हफ़्ते लाल गार्ड से हथियार ले आये, तोपोल्योव्का के बाहर खंदकें खोद ली गयी। जागीरदार के जोहड़ तक खोद लीं।

"उधर देख रहे हो जहां थाइम चारों ओर उग रहा है, इस बीहड़ की दूसरी ओर ही तोपोल्योव्कावाले खंदकों में लेट गये। वहां मेरे सेम्योन और अनिकेई भी थे। सुबह से लुगाइयां उन्हें खाना-पीना दे आयी थीं, जैसे ही सूरज चढ़ा – टीले पर घुड़सवार नज़र आये। छितरकर उन्होंने चढ़ाई की तैयारी की, तलवारें चमकने लगीं। खलिहान से मैंने देखा कि आगेवाले ने, जो सफ़ेद घोड़े पर सवार था, तलवार हिलायी और घुड़सवार शोर-शराबे के साथ टीले से नीचे आने लगे। सफ़ेद घोड़े की चाल से मैंने जागीरदार के घोड़े को पहचान लिया, और घोड़े से सवार को भी पहचान लिया... दो बार हमारे लोगों ने उन्हें खदेड़ दिया, पर तीसरी बार कज़्ज़ाकों ने घूमकर पीछे से हमला किया, चालाकी से काम लेकर, और ऐसी मार-काट हुई... दिन ढलते लड़ाई ख़त्म हो गयी। मैं घर से बाहर निकला, देखता हूं: घुड़सवार हवेली की ओर लोगों के झुंड को हांककर ले जा रहे हैं। मैंने लाठी उठायी और उस ओर चल पड़ा।

"अहाते में हमारे तोपोल्योव्कावाले झुंड में सिमटकर खड़े थे, वैसे ही जैसे ये भेड़ें। चारों ओर कज़्ज़ाक थे... मैंने पास जाकर पूछा:

"'भाइयो, मेरे पोते कहां हैं?'

"दोनों ने मुझे भीड़ से पुकारा। हमने आपस में कुछ देर बातचीत की; देखता हूं कि जागीरदार ड्योढ़ी से निकला। मुझे देखकर चिल्लाया:

"'अरे, यह तुम हो ज़खार दादा?'

"'जी हुज़ूर!'

"'क्यों आये हो?'

"ड्योढ़ी के पास जाकर मैं घुटनों के बल खड़ा हो गया।

"'पोतों को मुसीबत से बचाने आया हूं। मालिक, दया करो! ज़िंदगी भर आपके पिता जी की सेवा की, भगवान उनकी आत्मा को शांति दे, मालिक, मेरी लगन को याद करो, मेरे बुढ़ापे का लिहाज़ करो!..'

"वह बोला:

"'देखो, ज़खार दादा, मैं अपने पिता जी की सेवा के लिये तुम्हारा बहुत लिहाज़ करता हूं, पर तुम्हारे पोतों को नहीं छोड़ सकता। वे असली बाग़ी हैं। दादा समझा लो अपने मन को।'

"मैं उसकी टांगों से लिपट गया, ड्योढ़ी में रेंगने लगा।

"'मालिक, दया कर! मेरे प्यारे, याद कर कैसे दादा ज़खार तेरी ख़िदमत करता था, रहम कर, मेरे सेम्योन का तो दूधपीता बच्चा है!'

"उसने ख़ुशबूदार सिगरेट सुलगायी, धुआं छोड़कर बोला:

"'जा, उन हरामज़ादों से कह कि मेरे कमरे में आयें; अगर माफ़ी मांगेंगे तो ठीक है, पिता जी की याद की ख़ातिर उन्हें कोड़े लगवाकर अपने दस्ते में भरती कर लूंगा। क्या पता, अपनी लगन से वे अपने शर्मनाक क़ुसूर का पछतावा कर लें।'

"मैं दौड़ा-दौड़ा अहाते में गया, पोतों को बतलाया और आस्तीनों से पकड़कर उन्हें खींचने लगा:

"'जाओ, बेवक़ूफ़ो, जब तक माफ़ न कर दें ज़मीन पर लेटे रहना!'

"सेम्योन ने सिर तक नहीं उठाया। उकड़ूं बैठा तिनके से मिट्टी कुरेदता रहा। अनिकेई मुझे घूरता रहा और फिर चिल्लाकर बोला:

"'जा, अपने मालिक से कह दे कि ज़खार दादा ज़िंदगी भर घुटनों के बल रेंगता रहा, और उसका बेटा भी, पर पोते अब यह नहीं चाहते। जाओ यही बता दो उसे!'

"'नहीं जायेगा, कुतिया के पिल्ले?'

"'नहीं जाऊंगा!'

"'तेरे लिये, हरामी, जीने-मरने का मोल कौड़ी भर का है पर सेम्योन को कहां फंसा रहा है? अपनी लुगाई और बच्चे को किस पर छोड़ेगा?'

"देखता हूं कि सेम्योन के हाथ कांप उठे, चुपचाप तिनके से ज़मीन कुरेदता जा रहा है, न जाने क्या ढूंढ़ रहा है। बैल की तरह चुप है।

"'जाओ दादा, हमें मत सताओ,' अनिकेई ने मिन्नत की।

"'नहीं जाऊंगा, शैतान की दुम! अगर कुछ हो गया तो सेम्योन की अनीसिया न जाने क्या कर बैठे!..'

"सेम्योन के हाथ का तिनका चट से टूट गया।

"मैं इंतज़ार करने लगा। पर वे फिर चुप।

"'सेम्योन प्यारे, होश में आ, मेरे पालनहार! जा मालिक के पास।"

"'आ गये होश में! नहीं जायेंगे! जा तू रेंगकर!' गुस्से में अनिकेई बोला।

"मैंने कहा:

"'तू मुझे यह उलाहना दे रहा है कि जागीरदार के सामने मैंने घुटने टेके? तो क्या हुआ, मैं बुड्ढा हूं, मां की चूची की जगह मैंने जागीरदार का चाबुक चूसा... अपने पोतों के सामने घुटने टेकते हुए भी मैं नहीं शर्माऊंगा।'

"घुटनों के बल खड़ा हो गया, ज़मीन पर सिर पटक-पटककर बिनती करने लगा। किसानों ने मुंह फेर लिया मानो कुछ देख ही न रहे हों।

"'जाओ दादा... जाओ, नहीं तो मार डालूंगा!' अनिकेई चिल्लाया, उसके होंठों पर झाग आ गया, आंखों में फंदे में फंसे भेड़िये की तरह वहशी चमक थी।

"मैं उल्टे पांव जागीरदार के पास गया। उसकी टांगों से लिपट गया, हाथ जड़ हो गये, मुंह से कोई बोल न निकले। उसने पूछा:

"'कहां हैं पोते?'

"'मालिक, डरते हैं...'

"'अच्छा, डरते हैं...' और कुछ नहीं बोला। बूट से सीधे मेरे मुंह में ठोकर मारी और ड्योढ़ी में चला गया।"

जखार दादा हांफने लगे, पल भर के लिये उनका चेहरा पिचककर सफ़ेद पड़ गया; बड़ी कठिनाई से उन्होंने बुढ़ापे की रुलाई को दबाया। सूखे होंठों को हथेली से पोंछकर उन्होंने मुंह मोड़ लिया। दूरी पर, झील के उस पार डैने तिरछे फैलाकर चील घास से टकरायी और झपट्टा मारकर उसने सफ़ेद छातीवाली सोहन चिड़िया को हवा में उठाया। बर्फ़ के गालों की तरह पर बिखर गये, घास पर पड़े वे ऐसे चमक रहे थे कि उनको देखकर आंखों में असहनीय चौंध होती। जखार दादा ने नाक सिनकी और उंगलियों को क़मीज़ के किनारे से पोंछकर फिर बताने लगे:

"मैं भी पीछे-पीछे ड्योढ़ी पर चला गया, देखता हूं कि सेम्योन की अनीसिया बच्चे को गोद में लिये दौड़ी आ रही है। इस चील की तरह ही वह पति से टकरायी और उसकी बांहों में लटक गयी...

"जागीरदार ने सार्जेंट-मेजर को बुलाया, सेम्योन और अनिकेई की ओर इशारा किया। सार्जेंट-मेजर और छह कज़्ज़ाक उन्हें पकड़कर हवेली के पिछवाड़े में ले चले। मैं पीछे-पीछे चल पड़ा और अनीसिया बच्चे को अहाते में पटककर जागीरदार के पीछे-पीछे रेंगने लगी। सेम्योन सबसे आगे तेज़ी से चल रहा था, अस्तबल के पास जाकर वह बैठ गया।

"'तू क्या कर रहा है?' जागीरदार ने पूछा।

"'बूट काट रहे हैं, नहीं सहा जा रहा।'—और मुस्कराने लगा।

"बूट उतारकर मुझे देते हुए बोला:

"'दादा, जी भरकर पहनो। दोहरे तलवे के हैं, अच्छी हालत में हैं।'

"मैंने बूट ले लिये और फिर चल पड़े। चहारदीवारी के पास पहुंचे। टहनियों से बनी बाड़ के पास उन्हें खड़ा कर दिया। कज़्ज़ाक बंदूकों में गोलियां भरने लगे, जागीरदार पास ही में खड़ा छोटी-सी कैंची से नाखून काट रहा था, उसका हाथ गोरा-चिट्टा था। मैं उससे बोला:

"'मालिक, इन्हें कपड़े उतारने दीजिये। कपड़े अच्छे-खासे हैं, हम ग़रीबों के काम आ जायेंगे।'

"'उतारने दो।'

"अनिकेई ने पतलून उतारी, उसे उलटा करके बाड़ के खूंटे पर

टांग दिया। जेब से तंबाकू की थैली निकाली, सिगरेट जलायी, पैर चौड़े करके धुएं के छल्ले छोड़ने लगा, बाड़ के पार थूकने लगा... सेम्योन ने पूरे कपड़े उतार डाले, सूती जांघिया तक, पर टोपी उतारना भूल गया – शायद मति मारी गयी... मेरे शरीर में कभी भुरभुरी फैल जाती, कभी आग-सी लगने लगती। अपना सिर छूता तो चश्मे के पानी की तरह ठंडा पसीना बहता मिलता... देखता हूं – दोनों पास-पास खड़े हैं... सेम्योन की पूरी छाती घने बालों से ढकी थी, नंग-धड़ंग, पर सिर पर टोपी है... अनीसिया अपने पति को बिल्कुल नंगा, सिर्फ़ टोपी पहने देखकर, दौड़कर उससे चिपट गयी जैसे बेल पेड़ से लिपट जाती है। सेम्योन उसे धक्का देकर हटाने लगा।

"'जा यहां से, छिनाल!.. होश में आ, यहां इतने लोग हैं!.. क्या सूझी है तुझे, देखती नहीं कि मैं एकदम नंगा हूं... शर्म आती है...'

"अनीसिया ने अपने बाल बिखेर लिये और बस यही चिल्लाने लगी:

"'हम दोनों को गोली मार डालो!..'

"जागीरदार ने क़ैंची जेब में रखकर पूछा:

"'मारूं गोली?'

"'मार,. पापी!..'

"जागीरदार से इस तरह बोली!

"'बांध दो इसे खसम के साथ,' उसने हुक्म दिया।

"अनीसिया चेती और पीछे हटने लगी पर बात बिगड़ चुकी थी। कज़्ज़ाकों ने हंसते हुए उसे बागडोर से सेम्योन के साथ बांध दिया... पगली, ज़मीन पर ढह गयी और घरवाले को भी साथ गिरा दिया... जागीरदार ने पास जाकर दांत भींचकर पूछा:

"'क्या बच्चे की ख़ातिर माफ़ी-वाफ़ी नहीं मांगना चाहता?'

"'मांग लूंगा,' सेम्योन कराहकर बोला।

"'कोई बात नहीं, अब मांग लेना भगवान से... मुझसे मांगने में देर कर दी!..'

"ज़मीन पर पड़े-पड़े ही दोनों को गोली मार दी... अनिकेई गोली लगने पर लड़खड़ाया पर फ़ौरन गिरा नहीं। पहले घुटनों पर गिरा और फिर झटके से पीछे लेट गया, मुंह ऊपर था। जागीरदार

ने उसके पास जाकर बड़े स्नेह से पूछा:

"'जीना चाहता है? अगर चाहता है तो माफ़ी मांग। चल, पचास कोड़े लगवाकर मोर्चे पर भेज दूंगा।'

"अनिकेई ने मुंह में थूक भरा पर थूकने की शक्ति नहीं बची थी, थूक बस दाढ़ी पर बहकर रह गया... गुस्से से चेहरा फक पड़ गया, पर कर क्या पाता, तीन गोलियां उसे बींध चुकी थीं...

"'इसे सड़क पर फेंक दो!' जागीरदार ने आदेश दिया।

"कज़्ज़ाक उसे घसीटकर ले गये और बाड़ के ऊपर से सड़क पर फेंक दिया। उसी समय तोपोल्योव्का से कज़्ज़ाकों का रिसाला क़स्बे को जा रहा था, उनके साथ दो तोपें भी थीं। जागीरदार मुर्ग़े की तरह फुदककर बाड़ पर चढ़ गया और जोर से चिल्लाया:

"'तोपवाले, घोड़ों को सरपट दौड़ाते ले जाओ, बचाकर मत जाना!..'

"मेरे रोंगटे खड़े हो गये। हाथों में सेम्योन के कपड़े और बूट पकड़े था, पर टांगें मुड़ी जा रही थीं... घोड़ों में दैवी शक्ति होती है, एक ने भी अनिकेई पर पैर नहीं रखा, कूदकर उसे पार कर रहे थे... मैं टहनियों की बाड़ से चिपक गया, आंखें नहीं बंद कर पा रहा था, मुंह सूख गया था... तोप के पहिये अनिकेई की टांगों पर चढ़े... वे कुरकुरायीं जैसे दांतों में पापड़, तिनकों की तरह कुचल गयीं... सोचा अनिकेई भयंकर पीड़ा से मर जायेगा, पर वह चिल्लाया तक नहीं, उफ़ तक न निकली उसके मुंह से... सिर पूरे ज़ोर से ज़मीन से सटाये पड़ा हुआ था, मुट्ठी भर-भरकर सड़क की मिट्टी मुंह में ठूंस रहा था... मिट्टी चबाते हुए जागीरदार को अपलक देख रहा था और आंखें उसकी स्पष्ट, निर्मल थीं, आकाश की तरह...

"जागीरदार तोमीलिन ने उस दिन बत्तीस जनों को गोलियों से भुनवा दिया। बस अकेला अनिकेई ही ज़िंदा बच गया अपने गर्व के कारण..."

ज़खार दादा बड़ी देर तक बोतल से गटगट पानी पीते रहे। बदरंग होंठों को पोंछकर उन्होंने अनमने ढंग से क़िस्सा पूरा किया:

"गयी-बीती बात हो चुकी है। बस ख़ंदक़ें ही बची हैं जिनमे हमारे किसानों ने अपने लिये ज़मीन जीती। उनमें अब घास और झाड़ियां उगती हैं... अनिकेई के पैर काट दिये गये, अब वह हाथ

के बल चलता है धड़ को ज़मीन पर घसीट-घसीटकर। देखने में बड़ा हंसमुख है, सेम्योन के छोकरे के साथ दरवाज़े की चौखट में रोज़ क़द नापता है। छोकरा तो उससे लम्बा हो ही जायेगा... सर्दियों में गली में निकल जाता, लोग ढोरों को नदी पर पानी पिलाने के लिये हांकते और वह हाथ उठाकर रास्ते में बैठ जाता... बैल बिदककर नदी पर जमी बर्फ़ पर भाग जाते, वहां फिसल-फिसलकर बेहाल हो जाते और वह हंसता रहता... एक बार की बात है... बसंत में हमारे कम्यून का ट्रैक्टर खेत जोत रहा था, बस वह भी चल पड़ा उस तरफ़। मैं वहीं पास में भेड़ें चरा रहा था। देखता क्या हूं कि मेरा अनिकेई जुते खेत में रेंग रहा है। सोचने लगा कि वह क्या करना चाहता है? और देखता हूं कि अनिकेई ने चारों ओर नज़र दौड़ायी, आसपास कोई उसे दिखाई नहीं दिया, उसने ज़मीन से अपना चेहरा सटा लिया, हल के फाल से पलटे मिट्टी के लौंदे से कसकर लिपट गया, उसे सहलाने, चूमने लगा... उसे पच्चीसवां लग गया है, पर ज़मीन कभी नहीं जोत पायेगा... बस यही दुख उसे सताता है..."

धुंधली सांझ में नीलाभ स्तेपी ऊंघ रही थी, थाइम के झड़ते फूलों से मधुमक्खियां उस दिन के लिये आखिरी बार पराग बटोर रही थीं।

रुपहली और घनी फ़ैदर घास घमंड के साथ अपनी कलगीदार बालियां हिला रही थी। भेड़ों का रेवड़ तोपोल्योव्का की ओर ढलान पर उतर रहा था। ज़खार दादा हंकनी का सहारा लेते हुए चुपचाप चल रहे थे। धूल से ढके रास्ते पर चिन्हों की रेखाएं दिखाई दे रही थीं: एक भेड़िये का था—क़दम-ब-क़दम, फैले पंजे; दूसरा—तोपोल्योव्का के ट्रैक्टर के धारीदार पहियों का।

जहां कच्चा रास्ता पुराने ज़माने के, घास-फूस ढके राजमार्ग से मिलता है, चिन्ह भिन्न दिशाओं में जा रहे थे। भेड़िये के जंगली घास और कांटेदार झाड़ियों की दुर्गम हरियाली में डूबे बीहड़ों की ओर मुड़ गये और रास्ते पर मिट्टी के तेल की बू छोड़ता एक गहरा और अनवरत चिन्ह रह गया।

१६२६

बछेड़ा

दिन-दहाड़े, हरी मक्खियों से ढके लीद के ढेर के पास, अगली टांगों को पसारे, सिर के बल वह अपनी मां की कोख से निकला। जन्म लेते ही उसे किरच गोले के विस्फोट का नीला-सुरमई पुंज दिखायी पड़ा। धमाके ने उसकी नम काया को मां की टांगों के बीच पटक दिया। संत्रास—यहां, धरती पर यही उसकी प्रथम अनुभूति थी। अस्तबल की खपरैलवाली छत और ज़मीन पर ओलों की तरह, बदबूदार छर्रे बरसे। बछेड़े की मां—त्रोफ़ीम की लाखी घोड़ी—डर के मारे फुदकी और फिर हिनहिनाकर उसने पसीने से तर अपनी बग़ल को लीद के सुरक्षादायी ढेर पर टिका दिया।

तपिश भरी नीरवता में मक्खियों की भिनभिनाहट साफ़ सुनायी पड़ रही थी। तोप की गोलाबारी के डर से कहीं घनी घास में दुबके मुर्ग़े ने डैने फड़फड़ाकर, निःसंकोच परंतु फटे-फटे स्वर में बांग दी। घर के भीतर से घायल मशीनगनर का करुण क्रंदन सुनायी पड़ रहा था। कभी-कभी वह तीखे, फटे स्वर में चिल्लाता, बीच-बीच में चुन-चुनकर गालियां जड़ देता। फुलवारी में पोस्त के सिंदूरी मख़मली फूलों पर मधुमक्खियां गुंजार कर रही थीं। गांव के बाहर मैदान में मशीनगन दनादन गोलियां बरसा रही थी, उसकी उत्साहवर्द्धक तड़-तड़ की पृष्ठभूमि में, पहले और दूसरे गोले के बीच के अंतराल में लाखी घोड़ी ने ममता के साथ अपने नवजात शावक को चाटा। मां के फूले थन से चिपककर उसे पहली बार जीवन के आनंद और मां के स्नेह की अनंत मिठास की अनुभूति हुई।

जब खलिहान के पीछे कहीं गिरकर दूसरा गोला फटा, त्रोफ़ीम भड़ाक से मकान का दरवाज़ा खोलकर निकला और अस्तबल की ओर चल पड़ा। लीद के ढेर से बचता हुआ वह धूप की चौंध के कारण आंखों के ऊपर हथेली का छज्जा बनाकर चल रहा था। यह देखकर

कि तनाव से फुदकता बछेड़ा उसकी घोड़ी का थन चूस रहा है वह सकपका गया, उसने जेबों में हाथ डाला और कांपती उंगलियों से तंबाकू की थैली निकाली, काग़ज़ में तंबाकू लपेटकर उसने सिगरेट बनायी और उसकी बोलती लौट आयी:

"आ... हा... मतलब ब्याह गयी? तू ने भी खूब वक़्त चुना इसके लिये।" त्रोफ़ीम के इस वाक्य में कटु निराशा का भाव झलका।

घोड़ी की पसीना सूखने से खुरदरी हुई बग़लों पर घास के तिनके और सूखी लीद चिपकी हुई थी। वह बेहद दुबली लग रही थी पर आंखों से थकान मिश्रित गर्वोल्लास टपक रहा था और ऊपरवाले मखमली होंठ पर मुस्कान फैली थी। कम से कम त्रोफ़ीम को तो यही लगा। त्रोफ़ीम ने घोड़ी को अस्तबल में बांध दिया, गर्दन पर टंगे अनाज के झोले को हिलाते हुए वह फुफकारी। चौखट से टिककर त्रोफ़ीम ने बछेड़े की ओर तिरछी नज़र डाली और सख़्त आवाज़ में पूछा:

"उड़ा ली मौज?"

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह बोला:

"कम से कम इग्नात के घोड़े जैसा ही जनती, शैतान जाने किस पर गया है... बता तो सही, मैं इसका करूं क्या?"

अस्तबल की अंधकारमय नीरवता में अनाज चबने की आवाज़ आ रही थी, दरवाज़े में धूप की तिरछी सुनहरी किरणों का पुंज चमक रहा था। प्रकाश त्रोफ़ीम के बायें गाल पर पड़ रहा था, उसकी ललछौंही मूंछ और दाढ़ी के बाल चमक रहे थे, मुंह को घेरे झुर्रियां टेढ़ी-मेढ़ी काली खाइयों की तरह लग रही थीं। बछेड़ा तिनके जैसी पतली टांगों पर काठ के घोड़े की तरह खड़ा था।

"मार दूं इसे?" तंबाकू मसलने के कारण हरे अंगूठे से बछेड़े की ओर इशारा करके त्रोफ़ीम बोला।

घोड़ी पलक झपकती, अपनी लाल आंखों से मालिक की ओर उपहासपूर्ण नज़र से देख रही थी।

* * *

स्क्वाड्रन कमांडर के कमरे में उस दिन शाम को निम्न वार्तालाप हुआ:

"मैंने ग़ौर किया कि मेरी घोड़ी बड़ी संभलकर चलने लगी, सरपट नहीं दौड़ती, सांस फूलने लगता उसका। ध्यान से देखा तो वह ग्याभन निकली... इतनी संभलकर रहती कि पूछो मत... बछेड़ा तो कुम्मैत है... बस..." त्रोफ़ीम बता रहा था।

स्क्वाड्रन कमांडर तांबे का मग मुट्ठी में कसकर थामे चाय पी रहा था। उसने मग को ऐसे पकड़ रखा था जैसे कि हमला बोलने से पहले तलवार की मूठ को पकड़े हो। वह उनींदी आंखों से लैम्प को ताक रहा था। आग की पीली-सी लौ पर पतंगे मंडरा रहे थे, वे खिड़की से अंदर आते, गर्म चिमनी से झुलसकर गिर जाते और दूसरे उनका स्थान ले लेते।

"...क्या फ़र्क़ पड़ता है, चाहे भूरा हो या काला। गोली मार देनी चाहिये। बछेड़े के साथ तो हम बंजारों की तरह लगेंगे।"

"क्या? हां, मैं भी तो कहता हूं कि बंजारों की तरह लगेंगे। अगर सेना कमांडर आये तब? रेजिमेंट का निरीक्षण करने आयेंगे और वह परेड के वक़्त दुम हिलाता कुलांचें भरेगा... तब? सारी लाल सेना के सामने हमारी नाक कट जायेगी। समझ नहीं आता त्रोफ़ीम, तुमने यह होने कैसे दिया? गृह-युद्ध ज़ोरों पर है, इधर ऐसी भौंडी हरकतें... यह तो बड़ी शर्म की बात है। साईसों को मेरा कड़ा हुक्म: घोड़ों को घोड़ियों से अलग रखो।"

सुबह त्रोफ़ीम रायफ़ल लिये घर से बाहर निकला। सूरज अभी उगा नहीं था। घास पर गुलाबी ओस बिछी थी। पैदल सेना के बूटों से कुचला, खंदक़ों से पटा मैदान – दुख की पीड़ा से व्याकुल युवती के चेहरे की तरह लग रहा था। कैन्टीन में बावर्ची अपने काम में व्यस्त थे। स्क्वाड्रन कमांडर पसीने से गला पुराना बनियान पहने ड्योढ़ी पर बैठा था। रिवाल्वर की मूठ की उत्साहवर्द्धक ठंडक की अभ्यस्त हो चुकी उंगलियां फूहड़ ढंग से भूले-बिसरे, प्रिय काम को याद करते हुए बेंत की पौनी बुन रही थीं। पास से गुज़रते हुए त्रोफ़ीम ने कौतूहल के साथ पूछा:

"पौनी बना रहे हैं?"

स्क्वाड्रन कमांडर ने पतली टहनी से हत्थी को जोड़ा और दांत भींचकर बुदबुदाया:

"अरे, मकान मालकिन जो है न... कहती रहती है बना दो,

बना दो। एक ज़माने में इस काम का माहिर था, अब वह बात नहीं रही... ढंग की नहीं बनी।"

"नहीं, बढ़िया है," त्रोफ़ीम ने प्रशंसा की।

स्क्वाड्रन कमांडर ने घुटनों से छीलन को झाड़ते हुए पूछा :

"बछेड़े का काम तमाम करने जा रहे हो?"

त्रोफ़ीम चुपचाप हाथ हिलाकर अस्तबल में चला गया।

स्क्वाड्रन कमांडर सिर झुकाये गोली चलने की प्रतीक्षा करने लगा। एक के बाद एक पल बीतते जा रहे थे, पर गोली चलने की आवाज़ नहीं सुनायी दी। अस्तबल के पीछे से त्रोफ़ीम प्रकट हुआ, वह झेंपा-झेंपा-सा लग रहा था।

"क्यों, क्या हुआ?"

"लगता है रायफ़ल में कुछ गड़बड़ी है... टोपी पर हथौड़ा नहीं पड़ रहा।"

"ज़रा दिखाना, रायफ़ल।"

त्रोफ़ीम ने अनिच्छा के साथ दी। बोल्ट हटाकर स्क्वाड्रन कमांडर ने आंखें मिचमिचायीं।

"अरे, इसमें तो गोली ही नहीं है!.."

"कैसे नहीं है!.." त्रोफ़ीम चिहुंककर बोला।

"मैं कह रहा हूं, नहीं है।"

"अरे हां, मैंने तो उन्हें वहां... अस्तबल के पीछे फेंक दिया..."

स्क्वाड्रन कमांडर ने रायफ़ल को बग़ल में रख दिया और बड़ी देर तक हाथ में नयी पौनी को उलट-पलटकर निहारता रहा। बेंत की ताज़ी चिपचिपी टहनियां मधुर सुगंध फैला रही थीं, नथुनों में खिलते बेद-मजनूं की गंध भर रही थी, युद्ध की अनंत आग में विस्मृत श्रम की, धरती की सुगंध आ रही थी।

"सुनो!.. जाने दो!.. रहने दो उसे अभी अपनी मां के साथ। बाद में देखा जायेगा। लड़ाई ख़त्म हो जायेगी... खेत जोतने के काम आयेगा। सेनापति अगर आये तो उसकी मजबूरी को समझ लेंगे — दुधमुंहा है तो मां का थन चूसेगा ही... सेनापति ने भी चूची चूसी थी, हमने भी चूसी, आख़िर जब रीत ही ऐसी है तो बात ख़त्म! और, हां, तुम्हारी रायफ़ल में कोई ख़राबी नहीं है।"

* * *

कोई एक महीने बाद एक दिन त्रोफ़ीम के स्क्वाड्रन की उस्त-खोप्योर्स्की कस्बे के पास कज़्ज़ाक रिसाले से मुठभेड़ हो गयी। दिन ढलने से पहले गोलीबारी शुरू हो गयी। जब उन्होंने हल्ला बोला सांझ का झुटपुटा छाने लगा था। त्रोफ़ीम अपने प्लाटून से बहुत पीछे छूट गया। घोड़ी पर न कोड़े का और न ही एड़ों का कोई असर हो रहा था, वह सरपट नहीं दौड़ी। वह एक ही स्थान पर सिर उठाकर हिनहिनाती घूमने लगी जब तक कि दुम उठाये उसका बछेड़ा पास न आ गया। त्रोफ़ीम कूदकर उतर गया, तलवार को म्यान में ठूंसकर उसने गुस्से में कंधे से रायफ़ल उतारी। दायां पक्ष श्वेत सैनिकों से भिड़ गया था। खड्ड के पास घुड़सवारों का झुंड उमड़ रहा था, मानो हवा के झोंके उसे दायें-बायें उड़ा रहे हों। चुपचाप मार-काट हो रही थी। घोड़ों के खुरों से ज़मीन कांप रही थी। त्रोफ़ीम ने उस ओर एक नज़र डालकर बछेड़े के सिर का निशाना बांधा। न जाने गुस्से में हाथ कांप गया या निशाना चूकने का कोई और कारण था, जो भी हो, पर गोली चलने के बाद बछेड़े ने कुलांच भरी और खुरों से सफ़ेद धूल उड़ाता कुछ दूरी पर जा खड़ा हुआ। त्रोफ़ीम ने शैतान की औलाद पर साधारण नहीं, तांबे की लाल नोकोंवाली बख़्तरभेदी गोलियों की पूरी मैगज़ीन खाली कर डाली, जब उसे यक़ीन हो गया कि बख़्तर भेदी गोलियों तक से (जो संयोग से थैले में से उसके हाथ में आ गयी थीं) लाखी घोड़ी की औलाद का बाल बांका नहीं हुआ, तो वह घोड़ी पर सवार हो गया, और कोसता हुआ दुलकी चाल से उस ओर चल पड़ा, जहां लाल चेहरोंवाले दढ़ियल स्क्वाड्रन कमांडर और तीन लाल सैनिकों को खड्ड की ओर खदेड़ रहे थे।

उस रात स्क्वाड्रन ने एक छोटे-से खड्ड के पास पड़ाव डाला। सिगरेटें कम पीं। घोड़ों पर ज़ीनें कसी हुई थीं। दोन के तट से लौटे टोही दल ने बताया कि नदी पार करने के स्थान पर शत्रु का भारी जमाव है।

त्रोफ़ीम पैरों को रबड़ की बरसाती में लपेटे लेटा था। उनींद में वह दिन भर की घटनाओं को याद कर रहा था। उसकी आंखों के सामने खड्ड में कूदते स्क्वाड्रन कमांडर, कमिसार पर तलवार से वार

करते पोपले मुंहवाले दढ़ियल का लाल चेहरा, एक कज़्ज़ाक का क्षत-विक्षत शरीर, काले खून से तर किसी की ज़ीन और बछेड़ा घूम रहे थे।...

पौ फटने से पहले स्क्वाड्रन कमांडर त्रोफ़ीम के पास आया और अंधेरे में उसके पास बैठ गया।

"सो रहे हो, त्रोफ़ीम?"

"ऊंघ रहा हूं।"

बुझते तारों को देखता हुआ स्क्वाड्रन कमांडर बोला:

"अपने बछेड़े को मार दो! ढंग से लड़ाई नहीं करने देता... उसे देखकर हाथ कांप जाता है... तलवार नहीं उठती। यह सब इसलिये कि वह बिल्कुल नादान है, घर की याद दिलाता है और युद्ध के समय ऐसी बातों का कोई स्थान नहीं... पत्थर का दिल भी पसीज जाता है... देखो तो सही घमासान लड़ाई में हरामी को किसी ने कुचला नहीं, टांगों के बीच घूम रहा था..." चुप होकर वह खयालों में डूबा मुस्कराया, पर त्रोफ़ीम यह मुस्कान नहीं देख रहा था। "जानते हो त्रोफ़ीम, उसकी दुम... पीठ पर रखकर चौकड़ी भरता है और दुम हूबहू लोमड़ी जैसी है... क्या ज़बर्दस्त दुम है!..."

त्रोफ़ीम कुछ नहीं बोला। बरानकोट से सिर को ढककर ओस की नमी से ठिठुरता हुआ वह आश्चर्यजनक तेज़ी से सो गया।

* * *

पुराने मठ और पहाड़ी के बीच संकरे स्थान पर दोन निरंकुश वेग से बहती है। मोड़ पर पानी उफनता और हरी फेनिल लहरें बसंत की बाढ़ से तट पर बिखरे खड़िया के खंडों को पूरे ज़ोर से हिलातीं।

अगर कज़्ज़ाकों ने दोन के उस स्थान पर कब्ज़ा न कर लिया होता जहां उसका वेग धीमा और पाट चौड़ा व स्वभाव शांत है, और तलहटी पर वहां से गोलीबारी न शुरू की होती, तो स्क्वाड्रन कमांडर कभी भी मठ के सामने तैरकर नदी पार करने का निर्णय न लेता।

दोपहर को नदी पार करने का काम शुरू हो गया। छोटी-सी नौका पर मशीनगन से लैस बग्घी, उसके चालक और तीन घोड़े चढ़ा दिये गये। जब नौका दोन के बीचों-बीच पहुंचकर प्रवाह के विपरीत

तेज़ी से मुड़कर हल्की-सी झुक गयी, तो बायीं ओर जोता जानेवाला घोड़ा जिसने कभी पानी नहीं देखा था बिदक गया। पहाड़ी की तलहटी में, जहां स्क्वाड्रन घोड़ों की काठी-ज़ीन उतार रहा था, नौका के लकड़ी के फ़र्श पर उस घोड़े की नालों की ठकठक और व्याकुल खर्राहट साफ़-साफ़ सुनायी पड़ रही थी।

"नाव डूबो देगा!" भौंहें सिकोड़कर त्रोफ़ीम बुदबुदाया, उसका हाथ अपनी घोड़ी की पसीने से तर पीठ तक भी न जा पाया कि नौका में घोड़ा ज़ोर से हिनहिनाया और मशीनगनवाली बग्घी के बम को ठेलता हुआ पिछली टांगों पर खड़ा हो गया।

"गोली मार दे!..." स्क्वाड्रन कमांडर चाबुक को हाथ में मसोसते हुए चिल्लाया।

त्रोफ़ीम ने देखा कि मशीनगन चालक ने घोड़े की गर्दन पर लटककर उसके कान में पिस्तौल की नाल ठूंस दी। पटाखे की तरह गोली दग़ने की आवाज़ हुई, बाक़ी दोनों घोड़े सहमकर एक दूसरे से चिपक गये। मशीनगन चालकों ने नौका उलटने के डर से, मरे घोड़े को बग्घी से सटा दिया। उसकी अगली टांगें धीरे-धीरे मुड़ गयीं, सिर लटक गया...

कोई दसेक मिनट बाद संकरी रेती से सबसे पहले स्क्वाड्रन कमांडर ने अपने समंद घोड़े को पानी में उतारा, उसके पीछे छप-छप करता पूरा स्क्वाड्रन पानी में उतर गया – एक सौ आठ अधनंगे घुड़सवार और इतने ही नाना रंगी घोड़े। ज़ीन-काठियां तीन डोंगियों में थीं। उनमें से एक त्रोफ़ीम खे रहा था, अपनी घोड़ी उसने प्लाटून नायक नेचेपुरेन्को को सौंप दी थी। दोन के बीच पहुंचकर त्रोफ़ीम ने देखा कि अगले घोड़े घुटने भर नदी में उतरकर अनिच्छापूर्वक पानी गटक रहे थे। घुड़सवार दबे स्वर में उन्हें हांक रहे थे। कुछ देर बाद तट से कोई पचास गज़ की दूरी पर घोड़ों के सिर ही सिर दिखायी पड़ रहे थे, फूत्कार सुनायी पड़ रही थी। घोड़ों के साथ उनकी अयाल पकड़े, रायफ़लों पर कपड़ों की पोटलियां और झोले लटकाये लाल सैनिक तैर रहे थे।

डोंगी में चप्पू पटककर त्रोफ़ीम सीधा खड़ा हो गया और धूप से आंखें मिचमिचाते हुए तैरते झुंड में अपनी घोड़ी के लाखी सिर को खोजने लगा। स्क्वाड्रन शिकारियों की गोलियों की आवाज़ से डरकर आकाश में बिखरे जंगली हंसों की तरह लग रहा

था। आगे-आगे स्क्वाड्रन कमांडर का समंद घोड़ा अपनी चमकीली पीठ को ऊंचा उठाता तैर रहा था, उसकी पूंछ के पास सफ़ेद धब्बों की तरह उस घोड़े के कान चमक रहे थे जो कभी कमिसार का हुआ करता था। उनके पीछे काला झुंड तैर रहा था और सबसे पीछे, हर पल पिछड़ता हुआ प्लाटून नायक नेचेपुरेन्को का लटवाला सिर और उसके बायीं ओर त्रोफ़ीम की घोड़ी के खड़े कान दिखायी पड़ रहे थे। आंखों पर ज़ोर डालने परे उसे बछेड़ा भी दिखायी दे गया। वह झटक-झटककर तैर रहा था, कभी वह पानी से फुदकता तो कभी सिर्फ़ उसके नथुने दिखायी देते।

और तभी दोन पर चली हवा ने त्रोफ़ीम के कानों तक मकड़ी के तार की तरह महीन पुकार – हि-हि-हि ऽऽ पहुंचायी।

नदी की सतह पर गूंजता उसका हृदयविदारक चीत्कार तलवार की धार की तरह पैना था। वह कोड़े की तरह त्रोफ़ीम के दिल पर पड़ा और उसमें अजीब-सा परिवर्तन आ गया: पांच साल उसने लड़ते-लड़ते गुज़ार दिये, कितनी बार मौत से उसकी आंखें चार हुईं, पर उस पर कोई असर नहीं पड़ा, लेकिन इस समय ललछौंही दाढ़ीवाले चेहरे का रंग उड़ गया, धूसर-नीला पड़ गया – और चप्पू संभालकर उसने बहाव से उलटी दिशा में, उस ओर नाव मोड़ दी जहां भंवर में निढाल बछेड़ा घूम रहा था और उससे कोई बीस-एक गज़ की दूरी पर नेचेपुरेन्को, भंवर की ओर हिनहिनाकर तैरती मां को रोकने के लिये पूरा ज़ोर लगा रहा था। त्रोफ़ीम का मित्र स्तेश्का येफ़ेमोव जो नाव में काठियों के ढेर पर बैठा था सख़्ती से चिल्लाया:

"पागल, मत बन! किनारे की तरफ़ मोड़! देखता नहीं, वहां कज़्ज़ाक हैं!.."

"मार दूंगा!" त्रोफ़ीम सांस छोड़कर बोला और उसने पेटी से पकड़कर रायफ़ल पास खींची।

नदी का बहाव बछेड़े को उस स्थान से दूर ले गया, जहां से स्क्वाड्रन ने नदी पार की थी। छोटा-सा भंवर, हरी लहरों की जिह्वाओं से चाटता उसे धीरे-धीरे घुमा रहा था। त्रोफ़ीम ज़ोर-ज़ोर से चप्पू चला रहा था, नाव छलांगें-सी लगाती चल रही थी। दायें तट पर बीहड़ से कज़्ज़ाक दौड़ते निकले। मशीनगन ज़ोर-ज़ोर से तड़-तड़ करने लगी। पानी में गिरती गोलियां सूं-सूं कर रही थीं। किरमिच की

फटी क़मीज़ पहने अफ़सर पिस्तौल हिलाता हुआ कुछ चिल्ला रहा था।

बछेड़ा अब कभी-कभी हिनहिनाता, उसका करुण चीत्कार धीमा हो गया। उसका यह चीत्कार किसी बच्चे की चीख़ से इतना मिलता था कि रोम-रोम सिहर उठता। नेचेपुरेन्को ने घोड़ी को छोड़ दिया और बायें तट की ओर तैर चला। कांपते हाथों से त्रोफ़ीम ने रायफ़ल उठायी, भंवर में फंसे सिर के नीचे का निशाना लगाकर गोली चला दी, फिर उसने झटके से बूट उतार दिये और हाथ फैलाकर दबी-सी हुंकार करके पानी में कूद गया।

बायें तट पर किरमिच की क़मीज़ पहने अफ़सर दहाड़ा:

"गोली चलाना बंद करो!.."

पांच मिनट बाद त्रोफ़ीम बछेड़े के पास था, बायां हाथ ठंडे पेट के नीचे डालकर उसने बछेड़े को पकड़ लिया, और नाक-मुंह में पानी भरने के कारण ज़ोर-ज़ोर से हिचकियां लेता बायें तट की ओर तैर पड़ा... दायें तट से एक भी गोली नहीं चली।

आकाश, वन, रेत – सब चटख हरे, मायावी लग रहे थे... शक्ति बटोरकर बचा-खुचा ज़ोर लगाया – और त्रोफ़ीम ने अपने पांवों तले ज़मीन महसूस की। उसने घसीटकर बछेड़े की लिसलिसी काया को रेत पर खींचा और सुबकियां लेता हरे पानी की उलटियां करता रेत को टटोलने लगा... जंगल में नदी पार कर चुके स्क्वाड्रन के सैनिकों की आवाज़ों का कोलाहल गूंज रहा था, रेती के पीछे कहीं तोपें दग़ने की कांपती गरज सुनाई पड़ रही थी। लाखी घोड़ी बदन से पानी झाड़ती और बछेड़े को चाटती त्रोफ़ीम के पास खड़ी थी। उसकी लटकी पूंछ से रेत में पानी की इंद्रधनुषी धारा टपक रही थी।...

त्रोफ़ीम लड़खड़ाता हुआ खड़ा हुआ, रेत पर दो पग रखे और उछलकर बग़ल पर गिर पड़ा। मानो सीने में गर्म सुआ घुस गया; गिरते समय उसे गोली की आवाज़ सुनायी पड़ी। पीठ में इकलौती गोली लगी – दायें तट से चली। दायें तट पर किरमिच की फटी क़मीज़ पहने अफ़सर ने धुआं छोड़ते कारतूस को फेंकने के लिये उदासीनतापूर्वक कारबाइन का बोल्ट उतारा। उधर रेत पर बछेड़े से दो क़दम की दूरी पर त्रोफ़ीम दम तोड़ रहा था और उसके कड़े नीले होंठों पर, जिन्होंने पांच साल से अपने बच्चों को न चूमा था, मुस्कान और ख़ून के बुलबुले फूट रहे थे।

पराया खून

मौसम का पहला हिमपात हुआ। रात को दोन के पार से तेज़ हवा चल पड़ी, स्तेपी में पाले से ढकी झाड़ियां खड़खड़ाने लगीं, हवा ने बर्फ़ के अस्तव्यस्त ढेरों को संवार दिया और उबड़-खाबड़ सड़कों को समतल बनाने लगी।

रात ने कज़्ज़ाकों के गांव को नीरवता के हरित धुंधले आवरण से ढक दिया। घरों के पिछवाड़े में अनजुती, जंगली घास से ढकी स्तेपी ऊंघ रही थी।

आधी रात को बीहड़ों में भेड़िये की दबी-दबी हूंक सुनायी पड़ी, गांव के कुत्तों ने भौंककर उसका जवाब दिया और गवरीला दादा की नींद टूट गयी। अलावघर की टांड़ से पैर लटकाकर, बल्ली को पकड़े हुए वह बड़ी देर तक खांसते रहे, बलग़म थूककर उन्होंने तंबाकू की थैली निकाली।

हर रात मुर्ग़ों की पहली बांग के बाद दादा उठ जाते, बैठे-बैठे सिगरेट पीते, खांसते, खंखारकर फेफड़ों से बलग़म निकालते। खांसी के दौरों के बीच दिमाग़ में चिर-परिचित विचारों का तांता बंध जाता। दादा की सोच का विषय बस एक ही था – उनका बेटा, जो युद्ध में लापता हो गया था।

इकलौता था – पहला और आख़िरी। उसी के लिये दिन-रात हाड़तोड़ काम करते थे। जब लाल सेना से लड़ने के लिये उसे मोर्चे पर भेजने का समय आया – बैलों की दो जोड़ी बाज़ार ले गये, उनकी बिक्री से मिले पैसों से एक कल्मीक से फ़ौज लायक़ घोड़ा ख़रीदा। घोड़ा क्या, पूरा तूफ़ान था, हवा से बातें करता था। संदूक़ से अपने दादा की चांदी के काम की ज़ीन और लगाम निकालीं। विदाई के समय कहा:

"देखो, पेत्रो, मैंने तुम्हें बढ़िया सामान से लैस कर दिया है,

कोई अफ़सर तक ऐसे सामान के साथ शान से जा सकता है... उसी तरह सेवा करना जैसे तुम्हारे बाप ने की, कज़्ज़ाक फ़ौज और शांत दोन की नाक मत कटने देना! तुम्हारे दादा-परदादों ने ज़ारों की सेवा की, तुम्हें भी करनी चाहिये!.."

दादा हरी चांदनी से चमकती खिड़की में देख रहे हैं, बाहर आंगन में सरसराती, न जाने क्या तलाशती हवा की सांय-सांय को सुनते हुए उन दिनों को याद कर रहे हैं जो न लौटेंगे, फिर न वापस आयेंगे...

रंगरूट की विदाई के समय छप्पर गवरीला के तले कज़्ज़ाक गला फाड़-फाड़कर पुराना कज़्ज़ाक गीत गा रहे थे:

अरे हम लड़ते हैं पांतें बांधकर,
सुनते हैं सिर्फ़ हुक्म।
कमांडर आका हमारे देते जो हुक्म
पूरा करते हैं हम उसको
मार-काट करके ही लेते हैं हम दम!..

मेज़ पर बैठा पेत्रो मदहोश था, उसका चेहरा सफ़ेद-फक था, उसने आख़िरी, 'रक़ाब' का जाम पीकर थकान के साथ आंखें भींचीं, पर घोड़े पर सधकर बैठ गया। तलवार ठीक की और ज़ीन से झुककर अपने आंगन की मुट्ठी भर मिट्टी उठा ली। न जाने अब कहां वह सोया पड़ा है, न जाने परदेस में किस ज़मीन की गोद में लेटा हुआ है?

दादा ज़ोर से खांसते हैं, छाती में फेफड़े घर्र-घर्र करते हैं और जब बलग़म निकालकर वह झुकी कमर को बल्ली से टिकाते हैं वही जाने-पहचाने विचार फिर उन्हें घेर लेते हैं।

* * *

बेटे को विदा किया और एक महीने बाद लाल सैनिक आ गये। दुश्मनों की तरह वे परंपरागत कज़्ज़ाक रहन-सहन में घुस गये, दादा के आम, दैनंदिन जीवन को उन्होंने ख़ाली जेब की तरह पलट दिया। पेत्रो मोर्चे की उस ओर, दोनेत्स नदी के पास था, लड़ाइयों में बहादुरी दिखाते हुए जमादार बनने का जतन कर रहा था और गांव में गवरीला दादा मन ही मन परदेसियों, 'लालवालों' के प्रति तीव्र घृणा को

उसी तरह बड़े प्रेम से पाल-पोस रहा था जैसे कभी उसने अपने लाड़ले पेत्रो को पाला था।

वह उन्हें चिढ़ाने के लिये कज़्ज़ाक स्वाधीनता की प्रतीक लाल पट्टियोंवाली शलवारनुमा ऊनी पतलून में घूमता था। गारद की नारंगी किनारीवाला चेकमेन* पहनता था, जिस पर कभी लगे सार्जेंट-मेजर के फ़ीतों के निशान थे। ज़ार की जी-जान से सेवा के लिये मिले मेडल और क्रॉस छाती पर टांगकर इतवार के दिन गिरजे जाता। भेड़ के खाल के ओवरकोट को खोले रखता ताकि सब देख सकें।

एक बार गांव की सोवियत के अध्यक्ष ने मिलने पर उसे कहा :

"उतार दे, दादा ये लटकने! गुज़र गया इनका ज़माना।"

बुड्ढा भड़ककर बोला :

"तू कौन होता है ऐसा हुक्म चलानेवाला, क्या तूने टांगा था इन्हें, जो उतारने को कह रहा है?"

"जिसने टांगा, वह तो कब से क़ब्र में सड़ रहा है।"

"सड़ने दो!.. पर मैं नहीं उतारूंगा! क्या मरे से उतारेगा?"

"तुम भी क्या कहते हो... मैं तो तुम्हारा भला सोचकर सलाह दे रहा हूं, मेरी बला से तो तुम इनसे चिपककर सोओ, पर कुत्ते... कुत्ते तो तुम्हारी पैंट पर पैबंद लगवा देंगे! वे तो अब ऐसे भेस में लोगों को देखने के आदी नहीं रहे, तुम्हें पराया समझ बैठेंगे..."

वह अपकार का कड़वा घूंट पीकर रह गया। तमग़े उतार डाले पर मन ही मन अपकार की ठेस बढ़ते-बढ़ते क्रोध में बदल रही थी।

बेटा लापता हो गया – किसके लिये अब दौलत जमा करे। कोठरियां ढह रही थीं, मवेशी बाड़ा तोड़ रहे थे, भेड़-बकरियों की कोठरी का छप्पर आंधी में उड़ गया था, अब उसकी कड़ियां गल रही थीं। खाली अस्तबल में चूहे मौज कर रहे थे, बरामदे में रखी दरांती ज़ंग खा रही थी।

कज़्ज़ाक गांव से जाते समय घोड़े ले गये थे, बचे-खुचे "लालवाले" ले गये। और लाल सैनिकों से एवज़ में मिले, टांगों पर लम्बे-लम्बे बालों और बड़े-बड़े कानोंवाले आखिरी घोड़े को पतझड़ में मख़नो* के लोग फ़ोकट में ख़रीद ले गये। उसके बदले वे बुड्ढे को एक जोड़ी अंग्रेजी गेटर छोड़ गये।

"हम से भी तुम्हें कुछ मिलना ही चाहिये!" मख़नो का मशीनगन चालक आंख मारकर बोला। "हमारे माल से अमीर बनो दादा!.."

दसियों साल से जमा की गयी संपत्ति स्वाहा हो रही थी। काम करते हुए हाथ लटकते थे; पर वसंत में जब खाली, दीन और क्लांत स्तेपी पर पांव पड़ते – बूढ़े को भूमि अपनी ओर खींचती, रात को उसका अश्रव्य स्वर पुकारता लगता। बूढ़ा बेबस होकर बैलों को हल में जोतता और स्तेपी की छाती पर हल चलाने के लिये चल पड़ता, अतृप्त श्यामल भूमि में गेहूं के उम्दा बीज बिखेरता।

कज़्ज़ाक सागर तट से और सागर पार से लौट रहे थे पर उनमें से किसी ने भी पेत्रो को नहीं देखा था। उसके साथ विभिन्न रेजिमेंटों में रहे, विभिन्न स्थानों पर गये – रूस भला छोटा है? – पर पेत्रो की रेजिमेंट में शामिल उसके गांववासी कुबान प्रदेश में कहीं ज़्लोबिन के दस्ते से मुठभेड़ में अपनी पूरी रेजिमेंट के साथ खेत रहे थे।

गवरीला अपनी बुढ़िया से बेटे के विषय में लगभग कोई बात नहीं करता था।

रात को सुनता कि बुढ़िया तकिये को आंसुओं से भिगो रही है, नाक से सुड़-सुड़ कर रही है।

"क्या हुआ बुढ़िया?" वह कराहकर पूछता।

कुछ देर चुप रहकर वह बोलती :

"लगता है अलावघर की गैस भर गयी है घर में... सिर में दर्द-सा हो रहा है।"

वह यह न जताता कि उसे असलियत मालूम है, सलाह देता :

"अरे खीरे की कांजी पी लो। कहो तो तहख़ाने से ले आऊं?"

"सो जाओ। ऐसे ही ठीक हो जायेगा!.."

और फिर मकड़ी के अदृश्य जाले की तरह घर में नीरवता छा

* चेकमेन – कज़्ज़ाक सैन्यदल की वर्दी का कोट। – सं०

* मख़नो – उक्राइना में सोवियत सत्ता के खिलाफ़ लड़नेवाले एक गिरोह का सरदार। – सं०

जाती। चांद धृष्टता के साथ खिड़की में झांकता, पराये दुख, मां की पीड़ा का आनंद लेता।

फिर भी उन्हें बेटे के लौटने की प्रतीक्षा और आशा थी। गवरीला ने भेड़ की खालें कमाने के लिये दे दीं और बुढ़िया से बोला:

"हम दोनों तो जैसे-तैसे गुज़ारा कर लेंगे, पर पेत्रो लौटकर क्या पहनेगा? सर्दियां आ रही हैं, उसके लिये भेड़ की खाल का ओवरकोट सिलवा लेना चाहिये।"

उन्होंने प्योत्र के नाप का ओवरकोट सिलवाकर संदूक़ में रख दिया। उसके लिये रोज़मर्रा पहनने के बूट भी बनवा लिये। बूढ़े ने अपना वर्दी का नीला फ़्रेंच कोट संभालकर रख रखा था, उस पर तंबाकू छिड़क दिया ताकि कीड़े न काट दें। और जब मेमने को हलाल किया तो उसकी खाल से बूढ़े ने बेटे के लिये टोपी सी और खूंटी पर टांग दी। आंगन से जब घर में घुसता, तो लगता कि बस अब पेत्रो बग़ल के कमरे से बाहर निकलेगा और मुस्कराकर पूछेगा: "क्यों, बाबा, ठंड है बाहर?"

कोई दो-एक दिन बाद की बात है। शाम को बूढ़ा ढोरों को चारा-पानी देने गया था। नांद में चारा डालकर वह कुएं से पानी खींचना चाहता था, पर उसे याद आया कि दस्ताने तो घर में भूल आया। लौटकर उसने दरवाज़ा खोला और देखा कि बुढ़िया बेंच के पास घुटनों के बल बैठी पेत्रो के लिये बनायी गयी नयी टोपी को छाती से चिपकाकर, बच्चे की तरह झुला रही थी।...

बूढ़े की आंखों में अंधेरा छा गया, वह खूंख्वार जानवर की तरह उस पर झपटा, उसे ज़मीन पर धकेलकर होंठों पर निकले फेन को गटकते हुए चिल्लाया:

"छोड़, डायन!.. छोड़!.. तू कर क्या रही है?!"

टोपी छीनकर उसने संदूक़ में पटकी और उस पर ताला टांग दिया। बस तब से बुढ़िया की बायी आंख फड़कने लगी और मुंह टेढ़ा हो गया।

दिन और सप्ताह गुज़रते जा रहे थे, दोन में पानी बहता जा रहा था, पतझड़ के तेज़ बहाव में वह सदा की तरह स्वच्छ और पारदर्शी हरा था।

उस दिन दोन के किनारों पर बर्फ़ जम गयी। पीछे छूटे जंगली

हंसों की डार गांव के ऊपर से गुज़री। शाम को पड़ोसी का लड़का दौड़ा-दौड़ा गवरीला के पास आया, देव-प्रतिमा के सामने हड़बड़ी सलीब बनाकर बोला:

"सब ठीक-ठाक है?"

"भगवान की दया है।"

"दादा आपने सुना? प्रोख़ोर लिख़ोवीदोव तुर्की से लौटा है वह आपके पेत्रो की रेजिमेंट ही में तो था!.."

गवरीला खांसी के कारण हांफता जल्दी-जल्दी क़दम रखता तेः से गली में जा रहा था। प्रोख़ोर घर पर नहीं मिला: वह अपने भा के गांव गया हुआ था, कल आने की कह गया था।

गवरीला रात भर नहीं सोया। अनिद्रा उसे सता रही थी। पौ फटने से पहले उसने दीया जलाया और नमदे के बूटों पर तलवे टांक लगा।

भोर के धुंधले प्रभात में उषा की क्षीण लालिमा फूटी। सुबह हो गयी पर चंद्रमा आकाश के बीचों-बीच लटका रह गया, शक्ति उसमें इतनी नहीं बची थी कि काली घटा तक जाकर दिन भर को छिप जाये

* * *

नाश्ते से पहले गवरीला खिड़की से झांका, न जाने क्यों व फुसफुसाकर बोला:

"प्रोख़ोर आ रहा है!"

प्रोख़ोर ने घर में प्रवेश किया, वह बिलकुल भी कज़्ज़ाकों जैसा नहीं लग रहा था, परायी वेशभूषा में था। उसके पैरों में नाल ज अंग्रेज़ी बूट चरमरा रहे थे, अजीब-सा ओवरकोट उसके कंधों पर बो की तरह लटका था, शायद किसी बेगाने का उतारा था।

"गवरीला वसीलिच, ठीक-ठाक तो हो न!.."

"प्रभु की कृपा है!.. आओ, बैठो।"

प्रोख़ोर ने टोपी उतारी, बुढ़िया का अभिवादन किया और देव प्रतिमाओं के पासवाले कोने में बेंच पर बैठ गया।

"देखो तो, मौसम कैसा हो गया, बर्फ़ इतनी पड़ी है कि चलना दूभर है!.."

"हां, बर्फ़ इस बार जल्दी पड़ गयी... पुराने ज़माने में तो इन दिनों ढोर बाहर चरते थे।"

कुछ देर के लिये बोझिल चुप्पी छा गयी। देखने में तो गवरीला विरक्त और संतुलित लग रहा था, वह बोला:

"छोरे, परदेस में तो तू बुड्ढा हो गया!"

"जवान होने की कुछ वज़ह ही नहीं थी गवरीला वसीलिच!" प्रोख़ोर ने मुस्कराकर उत्तर दिया।

बुढ़िया ने मुंह खोला:

"हमारा पेत्रो..."

"चुप बुढ़िया!.." गवरीला ने सख़्ती से उसे डांटा। "आदमी बाहर से आया है, दम तो लेने दे, वक़्त आयेगा... पूछ लेना!.."

मेहमान की ओर मुड़कर उसने पूछा:

"हां, तो प्रोख़ोर इग्नातिच, दिन कैसे गुज़रे?"

"तारीफ़ करने लायक़ कोई बात है नहीं। लंगड़े कुत्ते के मानिंद किसी तरह घर तक पहुंच गया, यही ग़नीमत है।"

"यह बात है... मतलब, तुर्कों के यहां मुसीबतें झेलनी पड़ीं?"

"बड़ी मुश्किल से गुज़ारा कर होता था," प्रोख़ोर ने मेज़ पर उंगलियों से थाप की और बोला, "तुम भी, गवरीला वसीलिच, काफ़ी बूढ़े हो गये, तुम्हारे सिर के देखो कितने बाल सफ़ेद हो गये... सोवियत सत्ता में आप लोग कैसे रह रहे हैं?"

"बेटे की बाट जोह रहा हूं... बुढ़ापे में हमें सहारा देने के लिये..." गवरीला टेढ़े होंठों से मुस्कराया।

प्रोख़ोर ने झट से नज़रें दूसरी ओर मोड़ लीं। गवरीला ने यह देखकर सख़्ती से साफ़-साफ़ सवाल किया:

"बोलो: कहां है पेत्रो?"

"क्या आपने नहीं सुना?"

"तरह-तरह की बातें सुनी हैं," गवरीला चट से बोला।

मेज़पोश की मैली झालर को उंगलियों पर लपेटता प्रोख़ोर कुछ देर तक चुप बैठा रहा।

"शायद जनवरी की बात है... हां-हां, जनवरी की ही है, हमारा रिसाला नोवोरोस्सीस्क के पास पड़ाव डाले हुए था... यह शहर समुंदर के किनारे है... बस पड़ाव डाले हुए थे..."

"क्या मारा गया?.." गवरीला ने झुककर दबे स्वर में फ़ुसफ़ुसाहट के साथ पूछा।

प्रोख़ोर नज़रें झुकाकर कुछ देर चुप रहा, मानो उसने सवाल सुना ही नहीं।

"हम वहां तैनात थे, उधर लाल सेना पहाड़ों की तरफ़ बढ़ रही थी, हरी सेना से जुड़ने के लिये। आपके प्योत्र को रिसाले के कमांडर ने टोह लेने के लिये भेजा... कमांडर हमारा था सूबेदार सेनिन... बस तभी यह हुआ..."

अलावघर के पास टन् से देग गिरा, बुढ़िया हाथ फैलाकर पलंग की ओर जाती दिखाई दी, गले से रुलाई फूट रही थी।

"मत चीख़!!" गवरीला घुड़ककर चिल्लाया, मेज़ पर कोहनियां टिकाकर प्रोख़ोर को एकटक देखता हुआ धीरे-धीरे थके स्वर में बोला:

"पूरी भी कर बात!"

"टुकड़े-टुकड़े कर दिये!.." प्रोख़ोर चिल्लाकर खड़ा हुआ, उसका चेहरा पीला पड़ गया था, बेंच पर वह अपनी टोपी को टटोलता हुआ बोला। "पेत्रो को जान से मार डाला... वे जंगल के पास रुके थे दम लेने के लिये ताकि घोड़े भी कुछ आराम कर लें, उसने ज़ीन की पेटी ढीली कर दी, उधर जंगल में से लाल सैनिक आ धमके..." जल्दी-जल्दी बोलने के कारण प्रोख़ोर का सांस चढ़ रहा था, कांपते हाथों से वह टोपी को मसल रहा था। "पेत्रो ने ज़ीन की पेटी थामी और ज़ीन खिसक कर घोड़े के पेट पर आ गयी... घोड़ा बिदक गया... नहीं संभाल पाया, वहीं रह गया... बस!.."

"अगर मैं तेरी बात पर विश्वास न करूं?.." गवरीला शब्द चबा-चबाकर बोला।

प्रोख़ोर बिना पलटे जल्दी-जल्दी दरवाज़े की ओर चल पड़ा।

"मर्ज़ी आपकी है गवरीला वसीलिच, पर मैंने सच बताया... मैं सच बोल रहा हूं... सिर्फ़ सच... अपनी आंखों से देखा..."

"अगर मैं इस पर यक़ीन नहीं करना चाहता?!" गवरीला तमतमाकर बोला। उसकी डबडबायी आंखों में ख़ून उतर आया। क़मीज़ का गरेबान फाड़कर, बालों से ढकी छाती उघाड़कर, आहें भरता हुआ, पसीने से भीगे सिर को झटकता हुआ वह प्रोख़ोर पर

चढ़ गया, जो उसे इस हालत में देखकर सहम गया।

"इकलौते बेटे को मार डाला?! मां-बाप के सहारे को?! मेरे पेत्रो को?! झूठ बोलता है, कुतिया की औलाद!.. सुना तूने?! तू झूठ बोलता है! मैं यक़ीन नहीं करता!.."

पर रात को ओवरकोट पहनकर अहाते में निकला, बर्फ़ पर नमदे के बूट चरमराता खलिहान में गया और पुआल के ढेर के पास खड़ा हो गया।

'स्तेपी से हवा चल रही थी, बर्फ़ का बुरादा उड़ रहा था, चेरी की नंगी झाड़ियां काले सख्त अंधेरे से लदी हुई थीं।

"बेटा!" गवरीला ने दबे स्वर में पुकारा। कुछ रुककर बिना हिले-डुले, बिना सिर घुमाये फिर आवाज़ दी: "पेत्रो!.. मेरे बेटे!.."

फिर पुआल के ढेर के पास पैरों से कुचली बर्फ़ पर चित लेट गया और आंखें मूंद लीं।

* * *

गांव में अनाज-वसूली की और दोन के निचले भाग से आनेवाले डकैत गिरोहों की बातें उड़ रही थीं। कार्यकारिणी समिति में गांव के निवासियों की सभाओं में फुसफुसाकर खबरें सुनायी जाती थीं, पर बूढ़े गवरीला ने एक बार भी कार्यकारिणी समिति की टेढ़ी ड्योढ़ी पर पांव नहीं रखा था, जरूरत नहीं पड़ी, इसलिये उसने बहुत-सी बातें नहीं सुनीं, बहुत कुछ उसे मालूम न था। उसे बड़ा अजीब लगा जब इतवार के दिन गिरजे में दोपहर की प्रार्थना के बाद अध्यक्ष उसके यहां आया। अध्यक्ष के साथ उल्टी खाल के पीले छोटे ओवरकोट पहने तीन राइफ़लधारी थे।

अध्यक्ष ने गवरीला से हाथ मिलाया और फट से पूछा:

"दादा, क़बूल करो: अनाज है तुम्हारे पास?"

"और तुम क्या सोचते थे, हवा से पेट भरते हैं क्या?"

"तुम मज़ाक़ मत करो, ठीक से बताओ कहां है अनाज?"

"होगा कहां, बखार में है।"

"चलो।"

"पर यह तो बताओ कि मेरे अनाज से तुम्हारा क्या रिश्ता?"

लम्बे क़द के, सुनहरे बालोंवाले ने जो देखने में उनका मुखिया लगता था, ठंड के कारण बूटों की एड़ियां पटकते हुए कहा:

"राज्य के लिये फालतू अनाज इकट्ठा कर रहे है। अनाज-वसूली चल रही है। सुना है, बाबा?"

"पर अगर मैं न दूं?" गवरीला गुस्से में फुफकारकर बोला।

"नहीं दोगे? तो खुद ले लेंगे!.."

अध्यक्ष के साथ कानाफूसी करके वे बखार में घुस गये, सुनहरे-सांवले, चुने गेहूं पर उनके बूटों से बर्फ़ के चिथड़े बिखर गये। सुनहरे बालोंवाले ने सिगरेट पीते हुए फ़ैसला किया:

"बीज और खाने के लिये छोड़कर बाक़ी सब वसूल कर लो।" मालिक की नज़र से उसने अनाज की मात्रा का अनुमान लगाया और गवरीला की ओर मुड़कर बोला, "कितनी ज़मीन बोओगे?"

"ठेंगा बोऊंगा!.." गवरीला फटी आवाज़ में, खांसता हुआ बोला। "ले जाओ, पापियो!.. लूट लो!.. सब तुम्हारा ही तो है!.."

"तुम्हें क्या पागल कुत्ते ने काटा है, होश में आओ, गवरीला दादा!.." अध्यक्ष गवरीला को मनाने लगा।

"पराया माल तुम्हारे गले में अटके!.. ठूंसो अपने पेट में!.."

सुनहरे बालोंवाले ने अपनी मूंछों पर पिघलती बर्फ़ को झाड़ा और गवरीला को व्यंग्यपूर्ण अंदाज़ से आंख मारकर, शांत मुस्कान के साथ बोला:

"बाबा, तुम फुदको मत! चिल्लाने का कोई फ़ायदा नहीं। तुम चूं-चूं क्यों कर रहे हो, क्या किसी ने तुम्हारी दुम पर पैर रख दिया है?.." और भौंहें सिकोड़कर बिलकुल दूसरे लहजे में बोला: "ज़बान संभाल!.. अगर लम्बी है तो काट ले दांतों से!.. ऐसे प्रचार के लिये..." बात पूरी किये बिना उसने पेटी से लटके पिस्तौल के पीले खोल पर हाथ मारा और नर्म स्वर में बोला: "आज ही अनाज वसूली-केन्द्र पहुंचा देना!"

यह बात नहीं थी कि बूढ़ा डर गया, पर दृढ़ और स्पष्ट आवाज़ से वह सहम गया, समझ गया कि सचमुच, चिल्लाने से कुछ नहीं होगा। हाथ झाड़कर वह घर की ड्योढ़ी की ओर चल पड़ा। उसने अभी आधा आंगन भी पार न किया था कि वह वहशी चीख से सिहर गया:

"कहां है अनाज-वसूली दस्ता?!"

गवरीला ने मुड़कर देखा – टहनियों से बनी बाड़ की दूसरी ओर पिछली टांगों पर नाचते घोड़े पर घुड़सवार बैठा था। किसी असाधारण घटना के पूर्वाभास से गवरीला के घुटने कांपने लगे। वह मुंह भी न खोल पाया कि घुड़सवार ने बखार के पास खड़े लोगों को देखकर झटके से घोड़े को रोका और पलक झपकते कंधे से रायफ़ल उतार ली।

धांय से गोली चली, गोली चलने के बाद आंगन में छायी क्षणिक नीरवता में रायफ़ल का बोल्ट खटकने की आवाज़ सुनायी पड़ी और कारतूस का खोल सूं ऽऽ करके गिरा।

स्तब्धता टूट गयी: सुनहरे बालोंवाला चौखट से चिपक गया, कांपते हाथ से रिवाल्वर को खोल से निकालने में उसे बड़ी देर लग रही थी। अध्यक्ष आंगन में ख़रगोश की तरह फुटकता हुआ खलिहान की ओर दौड़ पड़ा, अनाज-वसूली दस्ते का एक आदमी बाड़ के पीछे हिलती काली टोपी पर कारबाइन से गोलियां चलाते हुए घुटने के बल गिर गया। अहाता गोलियों की धांय-धांय से भर गया। मानो बर्फ़ से चिपके अपने पैर गवरीला ने मुश्किल से उठाये और भारी क़दम घसीटता हुआ घर की ड्योढ़ी की ओर चल पड़ा। जब उसने मुड़कर देखा तो उल्टी खाल के कोट पहने तीन जने बिखरकर, बर्फ़ के ढेरों में फंसते हुए खलिहान की ओर दौड़ रहे थे और बेबाक़ खुले फाटक में घुड़सवार उमड़ते आ रहे थे।

आगेवाला घुड़सवार कुबानी टोपी पहने था। अपने ललौंहे घोड़े पर झुककर उसने सिर के ऊपर तलवार घुमायी। गवरीला की आंखों के सामने हंस के डैनों की तरह उसके सफ़ेद बाशलिक* के सिरे चमके, घोड़े के खुरों से उछली बर्फ़ के छींटे चेहरे पर पड़े।

निढाल गवरीला नक्काशीदार ड्योढ़ी का सहारा लेकर खड़ा हो गया। उसने देखा कि ललौंहा घोड़ा सिमटा और टहनियों की बाड़ को फांद गया, जौ की पुआल के ढेर के पास पिछली टांगों पर खड़ा होकर घूमने लगा और कुबानी कज़्ज़ाक, जीन से लटककर, घुटनों

---

* बाशलिक – (तुर्क) लम्बे सिरोंवाला हुड जो टोपी और मफ़लर दोनों का काम देता है। – अनु०

पर रेंगते अनाज-वसूली दस्ते के आदमी पर तलवार से आड़े-तिरछे वार करने लगा...

खलिहान से अस्पष्ट-सा शोर, हाथापाई की आवाज़ और किसी का दारुण चीत्कार सुनायी पड़ा। पल भर बाद सिर्फ़ एक बार धांय की आवाज़ आयी। गोलीबारी से डरकर उड़े क़बूतर उस समय बखार की छत पर उतर रहे थे, वे चौंककर आकाश में बैंगनी छर्रों की तरह फैल गये। घुड़सवार खलिहान में अपने घोड़ों से उतर गये।

गांव में निरंतर घंटे-घड़ियाल बज रहे थे। गांव का पगला लड़का पाशा गिरजे के घंटाग़ार पर चढ़ गया था, वह अपने पगलेपन के कारण ख़तरे का घंटा बजाने की जगह ईस्टर-नृत्य की धुन बजा रहा था।

कंधों पर सफ़ेद बाशलिक डाले कुबानी कज़्ज़ाक गवरीला के पास आया। उसका पसीने से गीला तमतमाया चेहरा फड़क रहा था, होंठों के लटके कोने थूक से गीले थे।

"जई है?"

गवरीला कठिनाई के साथ हिला, अभी-अभी उसने जो कुछ देखा था उससे उसकी ज़बान को मानो लक़वा मार गया।

"शैतान की औलाद, क्या तू बहरा हो गया?! पूछ रहा हूं, जई है? बोरी ला!"

चारे की नांद के पास घोड़ों को ला भी न पाये थे कि एक और घुड़सवार घोड़े को सरपट दौड़ाता फाटक में घुसा।

"चढ़ो घोड़ों पर! पहाड़ी से पैदल फ़ौज आ रही है..."

कुबानी कज़्ज़ाक ने कोसकर भाप छोड़ते पसीने से तर अपने घोड़े को लगाम पहनायी और बड़ी देर तक अपनी दायीं आस्तीन के कफ़ को बर्फ़ से रगड़ता रहा जो किसी सिंदूरी-लाल चीज़ में सना था।

फाटक से पांच घुड़सवार निकले, पिछलेवाले की ज़ीन से बंधे ख़ून के धब्बों से सने उल्टी खाल के पीले ओवरकोट को गवरीला ने पहचान लिया – वह सुनहरे बालोंवाले का था।

* * *

टीले के पीछे बेर की झाड़ियोंवाली घाटी में शाम तक गोलियां चलती रहीं। पिटे कुत्ते की तरह दुम दबाकर सन्नाटा गांव में पसरा

ड़ा था। जब गवरीला खलिहान में जाने का साहस जुटा पाया तब क सांझ का झुटपुटा छा गया था। उसने खुले दरीचे में प्रवेश किया। ध्यक्ष सिर लटकाये खलिहान के बाड़े की बल्ली पर पड़ा था। गोली यहीं उसको धराशायी कर दिया था। उसके लटके हाथ, मानो ाड़ की दूसरी ओर गिरी टोपी को उठाने का यत्न कर रहे थे।

पुआल के ढेर के पास, जहां जूठन और भूसी बिखरी पड़ी थीं, र्फ़ पर अनाज-वसूली दस्ते के तीनों जने एक पांत में लेटे हुए थे। च्छे-बनियान के अलावा उनके सारे कपड़े उतरे हुए थे। इस भयंकर श्य से दहले गवरीला के दिल में उनके प्रति अब वह क्रोध न रहा, ो सुबह खौल रहा था। यह दुःस्वप्न लगता था कि उसके खलिहान ां जहां हमेशा पड़ोसी की बकरियां उत्पात मचाती थीं, पुआल के ढेर में मुंह मारती थीं अब तिनके की तरह कटे तीन लोग पड़े हैं; ौर उनसे, डबरों में जमे उनके फेनिल खून से अब मुर्दों की हल्की-ी बू फैलने लगी है।...

सुनहरे बालोंवाला अस्वाभाविक मुद्रा में सिर मोड़े पड़ा था, गर सिर बर्फ़ से न चिपका होता तो यह लग सकता था कि वह टांग र टांग रखकर लेटा हुआ बेफ़िक्री से आराम कर रहा है।

दूसरा, चेचक के दाग़ और काली मूंछोंवाला, कंधे उचकाकर नुष की तरह पड़ा था, उसके अधखुले मुंह में चमकते दांतों पर अडिगता ौर क्रोध का भाव था। तीसरा पुआल में सिर छिपाये बर्फ़ पर तैराक ी मुद्रा में औंधा पड़ा था: उसकी फैली निर्जीव बाहें इतनी शक्तिशाली गती थीं।

गवरीला सुनहरे बालोंवाले के ऊपर झुका, काले पड़े चेहरे को यान से देखकर वह करुणा से सिहर गया: उसके सामने कोई उन्नीसेक रस का छोकरा पड़ा था, न कि ग़ुस्सैल, कटखनी आंखोंवाला खाद्य-कमिसार। मूंछों के पीले रोयों के पास होंठ पर पाला जम रहा था, स माथे पर आड़ी काली झुर्री थी – गहरी और गंभीर।

गवरीला ने यूं ही हाथ से उसकी नंगी छाती को छुआ। आकस्मिकता ने उसे झिंझोड़ दिया: उसकी हथेली को बर्फ़ीली ठंड में बुझती गर्मी की अनुभूति हुई...

जब कराहता और हांफता गवरीला खून से लथपथ, अकड़े शरीर को पीठ पर लादकर लाया तो बुढ़िया का मुंह खुला का खुला रह गया,

वह सलीब बनाते हुए अलावघर के पास हट गयी।

गवरीला ने उसे बेंच पर लिटाया, ठंडे पानी से धोया, और मोटे ऊनी मोज़े से हाथ, पांव, छाती को तब तक रगड़ता रहा जब तक ख़ुद पसीने से तर होकर निढाल न हो गया। उसने घिनौनी ठंडी छाती से कान लगाया और बड़ी मुश्किल से उसे दिल की धड़कन सुनायी दी, दिल रुक-रुककर धड़क रहा था।

* * *

चार दिन से वह मुर्दे की भांति केसरी-पीला कमरे में लेटा था। माथे से लेकर गाल तक तलवार के लाल घाव में खून जम गया था, कसकर पट्टी से बंधी छाती कंबल को ऊपर-नीचे उठाती घर्रघर्र, गुड़गुड़ करती फेफड़ों में हवा भरती थी।

रोज़ गवरीला उसके मुंह में अपनी फटी, रूखी उंगली डालता, छुरी की नोक से, सावधानी के साथ, उसके भिंचे जबड़ों को खोलता और बुढ़िया सरकंडे की नली से गर्म दूध और भेड़ की हड्डियों की यखनी डालती।

चौथे दिन सुनहरे बालोंवाले के गालों पर हल्की-सी लाली छा गयी, दोपहर तक उसका चेहरा दहकते अंगारे जैसा लाल हो गया, सारा शरीर कांपने लगा और ठंडा, चिपचिपा पसीना आने लगा।

तब से वह बेहोशी में बड़बड़ाने लगा, पलंग से उठने की कोशिश करने लगा। गवरीला और बुढ़िया दिन-रात बारी-बारी से उसके पास बैठे रहते।

जाड़े की लम्बी रातों में जब दोन के दियारे से आती पुरबिया काले आकाश में उथल-पुथल करती गांव के ऊपर ठंडी घटाओं को बिछा देती, गवरीला हाथों पर सिर टिकाकर घायल के पास बैठा अपरिचित बोली में उसकी बड़बड़ाहट को कान लगाकर सुनता; देर-देर तक उसकी काले गड्ढोंवाली बंद आंखों की आसमानी पलकों को देखता रहता। और जब बदरंग होंठों से लम्बी कराह, फटे स्वर में कोई फ़ौजी आदेश या भद्दी गाली निकलती और चेहरा क्रोध व दर्द से विकृत हो उठता – गवरीला का दिल पसीज जाता। ऐसे क्षणों में करुणा बिनबुलाये मेहमान की तरह मुंह उठाये आ जाती।

गवरीला देख रहा था कि हर दिन के साथ, बिना पलक मूंदे बितायी गयी हर रात के साथ बुढ़िया पलंग के पास बैठी-बैठी सूखती जा रही है। गवरीला ने उसके झुर्रियों से ढके गालों पर आंसू भी बहते देखे थे और वह समझ गया, सच कहा जाये तो अपने दिल से उसने महसूस किया कि भगवान को प्यारे हुए बेटे पेत्रो के प्रति उसके मन में बची ममता इस निर्जीव-से, मौत के मुंह से निकले पराये बेटे को देखकर धधक उठी है।...

एक बार गांव से गुज़रती रेजिमेंट का कमांडर आया। घोड़े को फाटक पर ही अर्दली को सौंपकर तलवार और महमेज़ें खड़काता दौड़कर ड्योढ़ी पर चढ़ गया। कमरे में उसने टोपी उतार दी और बड़ी देर तक घायल के पास मौन खड़ा रहा। घायल के चेहरे पर धुंधली छायाएं तैर रही थीं, बुख़ार से फटे होंठों से ख़ून रिस रहा था। कमांडर ने समय से पहले सफ़ेद हुए बालोंवाला अपना सिर हिलाया और धुंधली आंखों से न जाने किस ओर देखते हुए गवरीला से बोला:

"बाबा, हमारे साथी को बचा लो!"

"बचा लेंगे!" गवरीला ने दृढ़ता से उत्तर दिया।

दिन और सप्ताह बीतते जा रहे थे। बड़ा दिन गुज़र गया। सोलहवें दिन सुनहरे बालोंवाले ने पहली बार आंखें खोलीं और गवरीला को अस्फुट स्वर सुनायी पड़ा:

"बाबा यह तुम हो?"

"हां।"

"मेरी जबर्दस्त हजामत बनायी थी?"

"भगवान किसी की ऐसी न करे!"

उसकी निर्मल, दुर्ग्राह्य नज़रों में गवरीला को मासूम कटाक्ष का आभास-सा हुआ।

"और मेरे साथी?"

"उन्हें वो... उन्हें चौक पर दफ़ना दिया है।"

उसने कंबल पर टिकी उंगलियां हिलायीं और छत के बिना रंगे तख़्तों की ओर आंखें उठा लीं।

"तुम्हारा नाम क्या है?" गवरीला ने पूछा।

नसों से ढकी आसमानी पलकें धीरे से झुकीं।

"निकोलाई।"

"पर हम तुम्हें पेत्रो कहकर पुकारा करेंगे... हमारा बेटा था... पेत्रो..." गवरीला ने उसे समझाया।

कुछ सोचकर और किसी चीज़ के बारे में पूछना चाहता था पर उसे नाक की खर्र-खर्र सुनायी पड़ी और वह बाहें फैलाकर दबे पांव पलंग के पास से हट गया।

* * *

उसमें जीवन धीरे-धीरे, मानो अनिच्छा से लौट रहा था। दूसरे महीने में वह बड़ी मुश्किल से अपना सिर तकिये से उठा पाया था, पीठ पर लेटे रहने के कारण चकत्ते पड़ गये थे।

हर दिन के साथ गवरीला को भय के साथ यह अनुभूति होती कि उसे नये पेत्रो से गहरा लगाव होता जा रहा है और पहले, अपने बेटे की छवि उसी तरह धूमिल होती जा रही है जैसे मकान की अभ्रक जड़ी खिड़की पर अस्ताचलगामी सूरज की चमक। वह पहलेवाले दुःख और पीड़ा को लौटाने की लाख कोशिश करता पर अतीत दूर, बहुत दूर होता जाता और इससे गवरीला को मन ही मन शर्म आती, अटपटा लगता।... मवेशियों के बाड़े में जाकर घंटों कुछ न कुछ करता रहता पर यह याद करके कि पेत्रो के पलंग के पास बुढ़िया निरंतर बैठी है उसे ईर्ष्या होती। घर में जाकर सिरहाने के पास खड़ा हो जाता, अपनी अकड़ी उंगलियों से तकिये का गिलाफ़ ठीक करता और बुढ़िया की क्रुद्ध नज़र को देखकर चुपचाप बेंच पर बैठ जाता।

बुढ़िया पेत्रो को मारमोट की चर्बी और वसंत में जमा की गयी जड़ी-बूटियों का काढ़ा पिलाती। इस वजह से या बीमारी पर जवानी की शक्ति के हावी होने के कारण घाव भर गये, भर आये गालों पर लाली छाने लगी, बस दायां हाथ चंगा होने में देर लगा रहा था, क्योंकि घाव के साथ हड्डी भी टूट गयी थी: लगता था कि वह बेकार ही हो जायेगा।

फिर भी ईस्टर उपवास के दूसरे सप्ताह पेत्रो पहली बार खुद, किसी की सहायता के बिना, पलंग पर बैठ गया, उसे अपनी शक्ति पर आश्चर्य हो रहा था, बड़ी देर तक वह मुस्कराता रहा, उसे विश्वास नहीं हो रहा था।

रात को, रसोई में अलावघर की टांड़ पर खांसते हुए गवरीला ने फुसफुसाकर पूछा :

"तू सो रही है, बुढ़िया?"

"क्या चाहिये?"

"हमारेवाला तो पैरों पर खड़ा होने की तैयारी कर रहा... कल संदूक से पेत्रो की पतलून निकाल लेना... सारे कपड़े तैयार कर देना... उसके पास पहनने को तो कुछ है नहीं।"

"मैं खुद जानती हूं! कबके निकाल रखे हैं!"

"बड़ी चंट है!... खाल का ओवरकोट तो निकाला नहीं?"

"छोरा क्या ऐसे ही ठंड में घूमेगा भला!"

गवरीला करवटें बदलने लगा, नींद बस आ ही गयी थी, पर याद करके उसने विजेता की तरह सिर उठाया :

"और टोपी? टोपी के बारे में तो भूल गयी होगी तू बुड्ढी बत्तख?"

"छोड़ो भी मेरा पिंड! सौ बार पास से गुजरे, एक बार तो देख लिया होता, दो दिन से वहां कील पर टंगी है!..."

गवरीला खीजकर खांसा और चुप हो गया।

चंचल वसंत दोन को बर्फ़ की जकड़ से मुक्त करने लगा। बर्फ़ काली, भुरभुरी और ऊबड़-खाबड़ हो गयी, मानो उसमें कीड़े पड़ गये हों। पहाड़ी गंजी हो गयी। बर्फ़ स्तेपी से रेंगकर बीहड़ों और घाटियों में दुबक गयी। दोन का दियारा धूप की बाढ़ में डूबा सुप्त था। स्तेपी से आती हवा नागदौन की स्फूर्तिदायी कसैली गंध अपने साथ लाती थी।

मार्च का महीना समाप्त हो रहा था।

* * *

"बाबा, आज खड़ा हो जाऊंगा!"

हालांकि गवरीला के घर में आनेवाले सभी लाल सैनिक उसके सफ़ेद बालों को देखकर गवरीला को 'बाबा' कहकर ही पुकारते, पर इस बार स्वर में उसे अपनेपन की अनुभूति हुई। उसे शायद ऐसा लगा या फिर वास्तव में ही पेत्रो ने इस शब्द में पुत्र का प्रेम भरा, जो भी हो गवरीला बिलकुल लाल हो गया, उसे खांसी आ गयी और लजाई खुशी को छिपाकर बुदबुदाया :

"तीसरा महीना लग गया तुम्हें लेटे-लेटे... अब तो पेत्रो, उठने का वक़्त आ गया!"

पेत्रो गेड़ियों की तरह पैर रखता ड्योढ़ी में निकला और फेफड़ों में घुसे हवा के तेज़ झोंके से उसका दम घुटते-घुटते बचा। गवरीला उसे पीछे से सहारा दे रहा था और बुढ़िया ड्योढ़ी के पास बेचैन खड़ी अपने आंसुओं को पल्ले से पोंछ रही थी।

बखार के पास से गुज़रते हुए धर्म-पुत्र – पेत्रो ने पूछा :

"तब अनाज दे आये थे?"

"दे आया..." गवरीला अनमने में बुदबुदाया।

"बहुत अच्छा किया, बाबा!"

और फिर 'बाबा' शब्द सुनकर गवरीला गदगद हो गया। रोज़ पेत्रो बहंगी का सहारा लेकर लंगड़ाता हुआ धीरे-धीरे अहाते में टहलता। गवरीला चाहे जहां होता, खलिहान में, ओसारे में, सब जगह से वह अपने नये बेटे को बेचैन अन्वेषी नज़रों से देखता। कहीं ठोकर खाकर गिर न जाये!

आपस में वे कम ही बोलते थे, पर संबंध उनके बीच सरल और मधुर हो गये थे।

उस दिन के कोई दो-एक दिन बाद जब पेत्रो पहली बार बाहर निकला था, रात को सोने की तैयारी करते हुए गवरीला ने पूछा :

"बेटे, तुम कहां के हो?"

"उराल से आया हूं।"

"किसान-परिवार के हो?"

"नहीं, मजदूर हूं।"

"क्या मतलब? कोई धंधा करते थे क्या, जैसे मोची या बढ़ई का?"

"नहीं, बाबा, मैं कारखाने में काम करता था। लोहा ढालने के कारखाने में। बचपन से वही काम किया।"

"और अनाज वसूल करने कैसे आये?"

"फ़ौज ने भेजा था।"

"तुम क्या उनके कमांडर थे?"

"हां।"

पूछते हुए झिझक हो रही थी पर बातचीत का मक़सद तो यही था:

"मतलब यह कि तुम पार्टी के आदमी हो?"

"हां, मैं कम्युनिस्ट हूं।" पेत्रो ने निश्छल मुस्कान के साथ कहा। और इस निष्कपट मुस्कान के कारण गवरीला को पराया शब्द 'कम्युनिस्ट' अब भयावह नहीं लगा।

बुढ़िया ने मौक़ा देखकर झट से पूछा:

"पेत्रो प्यारे, तुम्हारा परिवार तो है न?"

"कोई नहीं है मेरा!.. आसमान में चांद की तरह अकेला हूं!"

"मां-बाप क्या मर गये?"

"बच्चा ही था, कोई सात-एक साल का था... बाप शराबियों की लड़ाई में मारा गया और मां कहीं गुलछर्रे उड़ा रही है..."

"देखो तो कुतिया को! मतलब तुम्हें, नन्हे-से को भाग्य के सहारे छोड़ गयी?"

"किसी ठेकेदार के साथ भाग गयी और मैं कारखाने में पला।"

गवरीला टांड़ से पैर लटकाकर बैठ गया, बड़ी देर तक चुप रहा, फिर एक-एक शब्द को तौलकर धीरे-धीरे बोलने लगा:

"तो बेटे, अगर तुम्हारा कोई रिश्तेदार नहीं तो हमारे पास ही रह जाओ... हमारा बेटा था, उसी की तरह हम तुम्हें पेत्रो कहकर बुलाते हैं... था बेटा पर न रहा और अब मैं और बुढ़िया, हम दोनों अकेले रह गये हैं... तुम्हारे लिये हमने कितनी मुसीबतें उठायीं, शायद इसी से हमें तुम से लगाव हो गया। चाहे तुम में पराया ख़ून है, पर हमारा दिल तुम्हारे लिये अपने ही बेटे की तरह दुखता है... रह जाओ यहीं! तुम्हारे साथ मिलकर खेती करेंगे, दोन प्रदेश की ज़मीन बड़ी उपजाऊ है... तुम्हारे कपड़े-लत्ते बनवा लेंगे, बहू लायेंगे... मैंने तो जितना हो सकता था कर लिया, अब घर-बार तुम ही संभालो। बस तुम हमारे बुढ़ापे का ख़याल रखना, मरने तक दो वक़्त की रोटी देते रहना... हमें छोड़कर मत जाना पेत्रो..."

अंगीठी के पीछे से झींगुर की नीरस झंकार सुनायी पड़ रही थी।

हवा से खिड़की के किवाड़ चरमरा रहे थे।

"मैंने और बुढ़िया ने तुम्हारे लिये बहू की खोज शुरू कर दी

है!.." गवरीला ने कृत्रिम हर्ष से आंख मारी, पर होंठ कांपे और उन पर करुण मुस्कान आ गयी।

पेत्रो टकटकी बांधे ऊबड़-खाबड़ फ़र्श को देख रहा था, बायें हाथ की उंगलियों से वह बेंच पर ठक-ठक कर रहा था। रुक-रुककर आती यह ध्वनि व्यथित कर रही थी।

स्पष्टतः, वह अपने उत्तर पर विचार कर रहा था। और फ़ैसला करके उसने ठक-ठक बंद की, सिर झटका:

"बाबा, मैं आपके यहां ख़ुशी से रह जाऊंगा, पर ख़ुद देखते हो, मैं ढंग का काम करने लायक़ रहा नहीं... हाथ मेरा चंगा होने का नाम ही नहीं लेता, साला! पर काम मैं करूंगा जितना हो सकेगा। गर्मी भर यहीं रहूंगा, बाद में देखा जायेगा।"

"और बाद में शायद तुम यहीं रह जाओगे!" गवरीला ने बात पूरी की।

बुढ़िया का चरखा हर्षोल्लास के साथ तकली पर रोयेंदार ऊन को लपेटता हुआ घरघराने लगा।

न मालूम वह थपक-थपककर लोरी सुना रहा था या मज़े की ज़िंदगी का लालच दे रहा था।

* * *

वसंत के बाद तपती धूप, स्तेपी की घनी धूल भरे दिन आये। बहुत दिनों के लिये मौसम साफ़ हो गया। अल्हड़ और तीव्र दोन में ऊंची-ऊंची लहरें उठने लगीं। वसंत की बाढ़ का पानी गांव के छोर के मकानों तक चढ़ आया। दोन के हरित-श्वेत दियारे में फूलते पोपलरों की मधुर सुगंध व्याप्त हो गयी, मैदान में जंगली सेबों की झड़ी पंखुड़ियों से ढकी झील उषा की लालिमा की तरह दीप्तिमान थी। रातों में क्षितिज पर बिजलियों की चमक बालाओं की तरह आंख-मिचौली खेलती, रातें भी क्षितिज पर बिजली की क्षणिक चमक की तरह छोटी हो गयीं। दिन भर के काम के बाद बैलों को आराम नहीं मिल पाता था। ढोर चरागाहों में चरते थे।

हफ़्ते भर से गवरीला पेत्रो के साथ स्तेपी में ही रह रहा था। वे जुताई करते, हेंगा चलाते, बोवाई करते और रात को छकड़े के

नीचे दोनों एक ही ओवरकोट को ओढ़कर सोते। पर गवरीला ने कभी यह नहीं कहा कि नये बेटे ने उसे कितना कसकर अदृश्य सूत्र से बांध लिया है। हंसमुख, कर्मठ सुनहरे बालोंवाले ने दिवंगत पेत्रो की छवि को धूमिल कर दिया। उसके बारे में गवरीला अब बहुत कम ही सोचता था। और काम में लगे रहने से सोचने का समय भी नहीं मिलता था।

दिन चोरों की तरह चुपचाप खिसकते जा रहे थे। घास काटने के दिन आ गये।

सुबह से पेत्रो घास काटने की मशीन को ठीक करने में जुटा था। उसने लोहारखाने में उसके ब्लेडों पर धार चढ़ायी और टूटे हिस्सों की जगह नये बनाकर लगा दिये। गवरीला यह देखकर चकित रह गया। सुबह से घास काटने की मशीन में लगा रहा और सांझ ढलने पर कार्यकारिणी के दफ़्तर चला गया: किसी सम्मेलन का बुलावा आया था। उसी समय बुढ़िया जो पनघट पर गयी थी रास्ते में डाकघर से एक चिट्ठी लायी। लिफ़ाफ़ा पुराना, चीकट था, पता गवरीला का था। लिफ़ाफ़े पर लिखा था कामरेड निकोलाई कोसीख के लिये।

अनिष्ट की अस्पष्ट-सी अनुभूति के साथ बड़ी देर तक गवरीला कापिंग पेंसिल से चौड़ी लिखावट में लिखे धुंधले अक्षरोंवाले लिफ़ाफ़े को हाथों में पलटता रहा।

वह रोशनी की तरफ़ करके देखता पर लिफ़ाफ़ा किसी के रहस्य की मुस्तैदी से रक्षा कर रहा था और गवरीला को इस पत्र के प्रति, जिसने जीवन के शांत क्रम को भंग कर दिया, बढ़ते क्रोध की अनुभूति हो रही थी।

मन में विचार कौंधा – फाड़ दूं, पर कुछ सोचकर उसे दे देने का फ़ैसला किया। फाटक पर ही उसने पेत्रो को ख़बर सुना दी:

"बेटे, तुम्हारे लिए कहीं से चिट्ठी आयी है।"

"मेरे लिए?" उसे आश्चर्य हुआ।

"हां, तुम्हारे लिये है। जाओ, पढ़ लो!"

कमरे में बत्ती जलाकर गवरीला पैनी, टोहक निगाहों से, पत्र पढ़ते पेत्रो के खुश चेहरे को देख रहा था। उससे रहा न गया और पूछ बैठा:

"कहां से आयी है?"

"उराल से।"

"किसकी है?" बुढ़िया ने कौतूहल के साथ पूछा।

"कारखाने के साथियों की है।"

गवरीला का माथा ठनका।

"क्या लिखते हैं?"

पेत्रो की आंखों में अंधेरा छा गया। अनिच्छा के साथ उसने उत्तर दिया:

"कारखाने में बुला रहे हैं... उसे चालू करना चाहते हैं। सन् सत्रह से रुका पड़ा है।"

"यह कैसे?.. मतलब तुम जाओगे?" फटे स्वर में गवरीला ने पूछा।

"पता नहीं..."

* * *

पेत्रो सूखकर पीला पड़ गया। रात को गवरीला उसे पलंग पर करवटें बदलते, आहें भरते सुनता। बहुत सोच-विचार के बाद वह समझ गया कि पेत्रो गांव में नहीं रहेगा, स्तेपी की अछूती श्यामल भूमि की छाती पर हल नहीं चलायेगा। पेत्रो को पाल-पोसकर बड़ा करनेवाला कारखाना एक न एक दिन उसे छीन ही लेगा और फिर से काले, मनहूस दिनों का क्रम शुरू हो जायेगा। बस चलता तो गवरीला घृणित कारखाने की ईंट से ईंट बजा देता, उसे मिट्टी में मिला देता ताकि वहां सिर्फ़ बिच्छू बूटी और जंगली घास ही उगे!..

तीसरे दिन घास की कटाई के समय जब वे दोनों पड़ाव पर पानी पीने आये, पेत्रो बोला:

"बाबा, मैं यहां नहीं रुक सकता! कारखाने में जाऊंगा... वह मुझे बुलाता है, मन में उथल-पुथल करता है..."

"क्या यहां की जिंदगी अच्छी नहीं है?.."

"नहीं, यह बात नहीं... कारखाना अपना है, जब कोल्चाक* ने चढ़ाई की तो डेढ़ हफ़्ते तक उसकी रक्षा करते रहे, कोल्चाक के

* एडमिरल कोल्चाक (१८७४-१९२०) प्रतिक्रांतिकारी श्वेत सेना का नायक। – सं०

लोगों ने बस्ती पर कब्ज़ा करते ही नौ जनों को फांसी दे दी। और अब जो मजदूर फ़ौज से लौटे हैं, फिर से कारखाने को पैरों पर खड़ा कर रहे हैं... वे खुद और उनके बाल-बच्चे भूखों मर रहे हैं, पर काम कर रहे हैं... ऐसी हालत में मैं यहां कैसे रह सकता हूं? मेरा ज़मीर क्या बोलेगा?"

"तुम क्या मदद कर पाओगे? एक हाथ तो तुम्हारा किसी काम का नहीं।"

"बाबा, आप भी अजीब बात करते हैं! वहां एक-एक हाथ अनमोल है!"

"मैं तुम्हें नहीं रोकता। जाओ! .." गवरीला ने खुद को ढाढस देते हुए कहा, "बुढ़िया को मत बताना... कह देना कि लौट आओगे... कुछ दिन रहकर लौट आओगे... नहीं तो तड़प-तड़पकर मर जायेगी... एक तुम ही तो हमारा सहारा थे..."

आशा की अंतिम किरण बची थी, गवरीला ने फुसफुसाकर, हांफते हुए पूछा:

"क्यों, सचमुच लौट आना। हूं? क्या हमारे बुढ़ापे पर इतना भी तरस नहीं खाओगे, क्यों?"

* * *

छकड़ा चूं-चूं कर रहा था, बैल अपनी मौज में चल रहे थे, पहियों से कुचलकर खड़िया मिट्टी खर-खर बिखर रही थी। दोन के किनारे-किनारे बल खाती सड़क चैपल के पास बायीं ओर मुड़ रही थी। मोड़ से क़स्बे के गिरजे और बाग़ों की हरियाली दिखायी पड़ रही थी।

गवरीला रास्ते भर बतियाता जा रहा था। वह मुस्कराने की कोशिश करता।

"इस जगह कोई तीन साल पहले लड़कियां दोन में डूब गयी थीं। इसीलिये चैपल बना है।" उसने चाबुक की मूठ से चैपल की मनहूस चोटी की ओर इशारा किया। "यहीं हम विदा लेंगे। आगे रास्ता नहीं है। पहाड़ी खिसक गयी है। यहां से क़स्बे तक कोई वेर्स्ता भर की दूरी होगी, धीरे-धीरे पहुंच जाओगे।"

पेत्रो ने पेटी से लटके खाने के झोले को ठीक किया और छकड़े

से उतर गया। बड़ी मुश्किल से रुलाई को दबाकर गवरीला ने चाबुक ज़मीन पर पटका और कांपती बांहें फैलायीं।

"अलविदा, मेरे प्यारे! .. तुम्हारे बिना हमारे लिये सूरज डूब जायेगा..." और पीड़ा से विकृत, आंसुओं से भीगे चेहरे को तिरछा करके तीखी, चिल्लाहट भरी आवाज़ में बोला: "बेटे, खाने की चीजें तो नहीं भूले? .. बुढ़िया ने तुम्हारे लिये बनायीं... नहीं भूले? ठीक है, अलविदा! .. बेटे प्यारे, अलविदा! .."

पेत्रो लंगड़ाता हुआ सड़क के संकरे किनारे पर चल पड़ा, वह लगभग दौड़ ही पड़ा था।

"लौट आना! .." छकड़े का सहारा लेकर गवरीला चिल्ला रहा था।

"नहीं लौटेगा! .." मन में गूंज रहा था।

मोड़ पर आखिरी बार सुनहरे बालोंवाला प्यारा सिर चमका, आखिरी बार पेत्रो ने टोपी हिलायी और उस स्थान पर जहां उसका पांव पड़ा, चंचल हवा ने सफ़ेद धूल का गुबार उड़ा दिया।

१९२६